8

शतक

सप्ततिका

कषायप्राभृत

सत्कर्मप्राभृत

कर्मप्रकृति

श्री चन्द्रर्षि महत्तर प्रणीत

पंचसंग्रह

मूल-शब्दार्थ एवं विवेचन युक्त

हिन्दी व्याख्याकार

मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज

योगोपयोगमार्गणा

बन्धक

बन्धव्य

बन्धहेतु

बन्धविधि

संपादक देवकुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री चन्द्रर्षि महत्तर प्रणीत

पंचसंग्रह

[उदीरणाकरण-प्ररूपणा अधिकार]

(मूल, शब्दार्थ, विवेचन युक्त)

हिन्दी व्याख्याकार

श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी

श्री मिश्रीमल जी महाराज

दिशा निदेशक

मरुधरारत्न प्रवर्तक मुनिश्री रूपचन्दजी म० 'रजत'

सम्प्रेरक

मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि

सम्पादक

देवकुमार जैन

प्रकाशक

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

□ श्री चन्द्रर्षिमहत्तर प्रणीत
पंचसंग्रह (८)
(उदीरणाकरण-प्ररूपणा अधिकार)

□ हिन्दी व्याख्याकार
स्व० मरुधरकेसरी प्रवर्तक मुनि श्री रूपचन्द जी महाराज

□ दिशा निदेशक
मरुधरारत्न प्रवर्तक मुनि श्री रूपचन्द जी म० 'रजत'

□ संयोजक सम्प्रेरक
मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि

□ सम्पादक
देवकुमार जैन

□ प्राप्तिस्थान
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

□ प्रथमावृत्ति
वि० सं० २०४२ श्रावण; अगस्त १९८६

लागत से अल्पमूल्य १०/- दस रुपया सिर्फ

□ मुद्रण
श्रीचन्द सुराना 'सरस' के निदेशन में
एन० के० प्रिंटर्स, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

जैनदर्शन का मर्म समझना हो तो 'कर्मसिद्धान्त' को समझना अत्यावश्यक है। कर्मसिद्धान्त का सर्वांगीण तथा प्रामाणिक विवेचन 'कर्मग्रन्थ' (छह भाग) में बहुत ही विशद रूप से हुआ है, जिनका प्रकाशन करने का गौरव हमारी समिति को प्राप्त हुआ। कर्मग्रन्थ के प्रकाशन से कर्मसाहित्य के जिज्ञासुओं को बहुत लाभ हुआ तथा अनेक क्षेत्रों से आज उनकी मांग बराबर आ रही है।

कर्मग्रन्थ की भाँति ही 'पंचसंग्रह' ग्रन्थ भी जैन कर्मसाहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें भी विस्तारपूर्वक कर्म-सिद्धान्त के समस्त अंगों का विवेचन हुआ है।

पूज्य गुरुदेव श्री मरुधरकेसरी मिश्रीमल जी महाराज जैनदर्शन के प्रौढ़ विद्वान और सुन्दर विवेचनकार थे। उनकी प्रतिभा अद्भुत थी, ज्ञान की तीव्र रुचि अनुकरणीय थी। समाज में ज्ञान के प्रचार-प्रसार में अत्यधिक रुचि रखते थे। यह गुरुदेवश्री के विद्यानुराग का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि इतनी वृद्ध अवस्था में भी पंचसंग्रह जैसे जटिल और विशाल ग्रन्थ की व्याख्या, विवेचन एवं प्रकाशन का अद्भुत साहसिक निर्णय उन्होंने किया और इस कार्य को सम्पन्न करने की समस्त व्यवस्था भी करवाई।

जैनदर्शन एवं कर्मसिद्धान्त के विशिष्ट अभ्यासी श्री देवकुमार जी जैन ने गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन में इस ग्रन्थ का सम्पादन कर प्रस्तुत किया है। इसके प्रकाशन हेतु गुरुदेवश्री ने प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना को जिम्मेदारी सौंपी और वि० सं० २०३९ के आश्विन मास में इसका प्रकाशन-मुद्रण प्रारम्भ कर दिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया । गुरुदेवश्री ने श्री सुराना जी को दायित्व सौंपते हुए फरमाया 'मेरे शरीर का कोई भी भरोसा नहीं है, इस कार्य को शीघ्र सम्पन्न कर लो'। उस समय यह बात सामान्य लग रही थी। किसे ज्ञात था कि गुरुदेवश्री हमें इतनी जल्दी छोड़कर चले जायेंगे। किंतु क्रूर काल की विडम्बना देखिये कि ग्रन्थ का प्रकाशन चालू ही हुआ था कि १७ जनवरी १९८४ को पूज्य गुरुदेव के आकस्मिक स्वर्गवास से सर्वत्र एक स्तब्धता व रिक्तता-सी छा गई। गुरुदेव का व्यापक प्रभाव समूचे संघ पर था और उनकी दिवंगति से समूचा श्रमणसंघ ही अपूरणीय क्षति अनुभव करने लगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने जिस महाकाव्य ग्रन्थ पर इतना श्रम किया और जिसके प्रकाशन की भावना लिये ही चले गये, वह ग्रन्थ अब पूज्य गुरुदेवश्री के प्रधान शिष्य मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि जी महाराज के मार्गदर्शन में सम्पन्न हो रहा है, यह प्रसन्नता का विषय है। श्रीयुत सुराना जी एवं श्री देवकुमार जी जैन इस ग्रन्थ के प्रकाशन-मुद्रण सम्बन्धी सभी दायित्व निभा रहे हैं और इसे शीघ्र ही पूर्ण कर पाठकों के समक्ष रखेंगे, यह दृढ़ विश्वास है।

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान अपने कार्यक्रम में इस ग्रन्थ को प्राथमिकता देकर सम्पन्न करवाने में प्रयत्नशील है।

आशा है जिज्ञासु पाठक लाभान्वित होंगे।

मन्त्री

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान

जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

जैनदर्शन के सम्पूर्ण चिन्तन, मनन और विवेचन का आधार आत्मा है। आत्मा स्वतन्त्र शक्ति है। अपने सुख-दुःख का निर्माता भी वही है और उसका फल-भोग करने वाला भी वही है। आत्मा स्वयं में अमूर्त है, परम विशुद्ध है, किन्तु वह शरीर के साथ मूर्तिमान बनकर अशुद्धदशा में संसार में परिभ्रमण कर रहा है। स्वयं परम आनन्दस्वरूप होने पर भी सुख-दुख में चक्र में पिस रहा है। अजर-अमर होकर भी जन्म-मृत्यु के प्रवाह में बह रहा है। आश्चर्य है कि जो आत्मा परम शक्तिसम्पन्न है, वही दीन-हीन, दुःखी, दरिद्र के रूप में संसार में यातना और कष्ट भी भोग रहा है। इसका कारण क्या है ?

जैनदर्शन इस कारण की विवेचना करते हुए कहता है—आत्मा को संसार में भटकाने वाला कर्म है। कर्म ही जन्म-मरण का मूल है—**कम्मं च जाई मरणस्स मूलं**। भगवान श्री महावीर का यह कथन अक्षरशः सत्य है, तथ्य है। कर्म के कारण ही यह विश्व विविध विचित्र घटनाचक्रों में प्रतिपल परिवर्तित हो रहा है। ईश्वरवादी दर्शनों ने इस विश्ववैचित्र्य एवं सुख-दुःख का कारण जहाँ ईश्वर को माना है, वहाँ जैनदर्शन ने समस्त सुख-दुःख एवं विश्व वैचित्र्य का कारण मूलतः जीव एवं उसके साथ संबद्ध कर्म को माना है। कर्म स्वतन्त्र रूप से कोई शक्ति नहीं है, वह स्वयं में पुद्गल है, जड़ है। किन्तु राग-द्वेष-वशवर्ती आत्मा के द्वारा कर्म किये जाने पर वे इतने बलवान और शक्ति-सम्पन्न बन जाते हैं कि कर्ता को भी अपने बन्धन में बांध लेते हैं। मालिक को भी नौकर की तरह नचाते हैं। यह कर्म की बड़ी विचित्र शक्ति है। हमारे जीवन और जगत के समस्त परिवर्तनों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह मुख्य बीज कर्म क्या है ? इसका स्वरूप क्या है ? इसके विविध परिणाम कैसे होते हैं ? यह बड़ा ही गम्भीर विषय है। जैनदर्शन में कर्म का बहुत ही विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कर्म का सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अत्यन्त गहन विवेचन जैन आगमों में और उत्तरवर्ती ग्रन्थों में प्राप्त होता है। वह प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में होने के कारण विद्वद्भोग्य तो है, पर साधारण जिज्ञासु के लिए दुर्बोध है। थोकड़ों में कर्मसिद्धान्त के विविध स्वरूप का वर्णन प्राचीन आचार्यों ने गूँथा है, कण्ठस्थ करने पर साधारण तत्त्व-जिज्ञासु के लिए वह अच्छा ज्ञानदायक सिद्ध होता है।

कर्मसिद्धान्त के प्राचीन ग्रन्थों में कर्मग्रन्थ और पंचसंग्रह इन दोनों ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें जैनदर्शन-समस्त समस्त कर्मवाद, गुणस्थान, मार्गणा, जीव, अजीव के भेद-प्रभेद आदि समस्त जैनदर्शन का विवेचन प्रस्तुत कर दिया गया है। ग्रन्थ जटिल प्राकृत भाषा में हैं और इनकी संस्कृत में अनेक टीकाएँ भी प्रसिद्ध हैं। गुजराती में भी इनका विवेचन काफी प्रसिद्ध है। हिन्दी भाषा में कर्मग्रन्थ के छह भागों का विवेचन कुछ वर्ष पूर्व ही परम श्रद्धेय गुरुदेवश्री के मागदर्शन में प्रकाशित हो चुका है, सर्वत्र उनका स्वागत हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन में पंचसंग्रह (दस भाग) का विवेचन भी हिन्दी भाषा में तैयार हो गया और प्रकाशन भी प्रारम्भ हो गया, किन्तु उनके समक्ष एक भी नहीं आ सका, यह कमी मेरे मन को खटकती रही, किन्तु निरुपाय ! अब गुरुदेवश्री की भावना के अनुसार ग्रन्थ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है आशा है इससे सभी लाभान्वित होंगे।

—सुकनमुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणसूर्य प्रवर्तक गुरुदेव
श्री मिश्रीमल जी महाराज

विद्याभिलाषी श्री सुकन मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणसंघ के भीष्म-पितामह

श्रमणसूर्य स्व. गुरुदेव श्री मिश्रीमल जी महाराज

स्थानकवासी जैन परम्परा के ५०० वर्षों के इतिहास में कुछ ही ऐसे गिने-चुने महापुरुष हुए हैं जिनका विराट व्यक्तित्व अनन्त असीम नभोमण्डल की भांति व्यापक और सीमातीत रहा हो। जिनके उपकारों से न सिर्फ स्थानकवासी जैन, न सिर्फ श्वेताम्बर जैन, न सिर्फ जैन किन्तु जैन-अजैन, बालक-वृद्ध, नारी-पुरुष, श्रमण-श्रमणी सभी उपकृत हुए हैं और सब उस महान् विराट व्यक्तित्व की शीतल छाया से लाभान्वित भी हुए हैं। ऐसे ही एक आकाशीय व्यक्तित्व का नाम है श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज !

पता नहीं वे पूर्वजन्म की क्या अखूट पुण्याई लेकर आये थे कि बाल सूर्य की भांति निरन्तर तेज-प्रताप-प्रभाव-यश और सफलता की तेजस्विता, प्रभास्वरता से बढ़ते ही गये, किन्तु उनके जीवन की कुछ विलक्षणता यही है कि सूर्य मध्यान्ह बाद क्षीण होने लगता है, किन्तु यह श्रमणसूर्य जीवन के मध्यान्होत्तर काल में अधिक अधिक दीप्त होता रहा, ज्यों-ज्यों यौवन की नदी बुढ़ापे के सागर की ओर बढ़ती गई त्यों-त्यों उसका प्रवाह तेज होता रहा, उसकी धारा विशाल और विशालतम होती गई, सीमाएँ व्यापक बनती गई, प्रभाव-प्रवाह सौ-सौ धाराएँ बनकर गांव-नगर-वन-उपवन सभी को तृप्त-परितृप्त करता गया। यह सूर्य डूबने की अन्तिम घड़ी, अंतिम क्षण तक तेज से दीप्त रहा, प्रभाव से प्रचण्ड रहा और उसकी किरणों का विस्तार अनन्त असीम गगन के दिक्कोणों के छूता रहा।

जैसे लड्डू का प्रत्येक दाना मीठा होता है, अंगूर का प्रत्येक अंश मधुर होता है, इसी प्रकार गुरुदेव श्री मिश्रीमल जी महाराज का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण, उनकी जीवनधारा का प्रत्येक जलबिन्दु मधुर मधुरतम जीवनदायी रहा। उनके जीवन-सागर की गहराई में उतरकर गोता लगाने से गुणों की विविध बहुमूल्य मणियां हाथ लगती हैं तो अनुभव होता है, मानव जीवन का ऐसा कौन सा गुण है जो इस महापुरुष में नहीं था। उदारता, सहिष्णुता, दयालुता, प्रभावशीलता, समता, क्षमता, गुणज्ञता, विद्वत्ता, कवित्वशक्ति, प्रवचनशक्ति, अदम्य साहस, अद्भुत नेतृत्वक्षमता, संघ-समाज की संरक्षणशीलता, युगचेतना को धर्म का नया बोध देने की कुशलता, न जाने कितने उदात्त गुण व्यक्तित्व सागर में छिपे थे। उनकी गणना करना असंभव नहीं तो दुःसंभव अवश्य ही है। महान तार्किक आचार्य सिद्धसेन के शब्दों में—

कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन जलधेर्नंनु रत्नराशेः

कल्पान्तकाल की पवन से उत्प्रेरित, उचालें खाकर बाहर भूमि पर गिरी सद्रमु की असीम अगणित मणियां सामने दीखती जरूर हैं, किन्तु कोई उनकी गणना नहीं कर सकता, इसी प्रकार महापुरुषों के गुण भी दीखते हुए भी गिनती से बाहर होते हैं।

जीवन रेखाएँ

श्रद्धेय गुरुदेव का जन्म वि० सं० १९४८ श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को पाली शहर में हुआ।

पांच वर्ष की आयु में ही माता का वियोग हो गया। १३ वर्ष की अवस्था में भयंकर बीमारी का आक्रमण हुआ। उस समय श्रद्धेय गुरुदेव श्री मानमलजी म. एवं स्व. गुरुदेव श्री बुधमलजी म. ने मंगलपाठ सुनाया और चमत्कारिक प्रभाव हुआ, आप शीघ्र ही स्वस्थ हो गये। काल का ग्रास बनते-बनते बच गये।

गुरुदेव के इस अद्भुत प्रभाव को देखकर उनके प्रति हृदय की असीम श्रद्धा उमड़ आई। उनका शिष्य बनने की तीव्र उत्कंठा जग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पड़ी। इसी बीच गुरुदेवश्री मानमलजी म. का वि. सं. १९७४, माघ वदी ७ को जोधपुर में स्वर्गवास हो गया। वि. सं० १९७५ अक्षय तृतया को पूज्य स्वामी श्री बुधमलजी महाराज के कर-कमलों से आपने दीक्षारत्न प्राप्त किया।

आपकी बुद्धि बड़ी विचक्षण थी। प्रतिभा और स्मरणशक्ति अद्‌भुत थी। छोटी उम्र में ही आगम, थोकड़े, संस्कृत, प्राकृत, गणित, ज्योतिष, काव्य, छन्द, अलंकार, व्याकरण आदि विविध विषयों का आधिकारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रवचनशैली की ओजस्विता और प्रभावकता देखकर लोग आपश्री के प्रति आकृष्ट होते और यों सहज ही आपका वर्चस्व, तेजस्व बढ़ता गया।

वि. सं० १९८५ पौष वदि प्रतिपदा को गुरुदेव श्री बुधमलजी म. का स्वर्गवास हो गया। अब तो पूज्य रघुनाथजी महाराज की संप्रदाय का समस्त दायित्व आपश्री के कंधों पर आ गिरा। किन्तु आपश्री तो सर्वथा सुयोग्य थे। गुरु से प्राप्त संप्रदाय-परम्परा को सदा विकासोन्मुख और प्रभावनापूर्ण ही बनाते रहे। इस दृष्टि से स्थानांगसूत्र-वर्णित चार शिष्यों (पुत्रों) में आपको अभिजात (श्रेष्ठतम) शिष्य ही कहा जायेगा, जो प्राप्त ऋद्धि-वैभव को दिन दूना रात चौगुना बढ़ाता रहता है।

वि. सं. १९९३, लोंकाशाह जयन्ती के अवसर पर आपश्री को मरुधरकेसरी पद से विभूषित किया गया। वास्तव में ही आपकी निर्भीकता और क्रान्तिकारी सिंह गर्जनाएँ इस पद की शोभा के अनुरूप ही थीं।

स्थानकवासी जैन समाज की एकता और संगठन के लिए आपश्री के भगीरथ प्रयास श्रमणसंघ के इतिहास में सदा अमर रहेंगे। समय-समय पर टूटती कड़ियां जोड़ना, संघ पर आये संकटों को दूरदर्शिता के साथ निवारण करना, संत-सतियों की आन्तरिक व्यवस्था को सुधारना, भीतर में उठती मतभेद की कटुता को दूर करना—यह आपश्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की ही क्षमता का नमूना है कि बृहत् श्रमणसंघ का निर्माण हुआ, बिखरे घटक एक हो गये।

किन्तु यह बात स्पष्ट है कि आपने संगठन और एकता के साथ कभी सौदेबाजी नहीं की। स्वयं सब कुछ होते हुए भी सदा ही पद-मोह से दूर रहे। श्रमणसंघ का पदवी-रहित नेतृत्व आपश्री ने किया और जब सभी का पद-ग्रहण के लिए आग्रह हुआ तो आपश्री ने उस नेतृत्व चादर को अपने हाथों से आचार्यसम्राट (उस समय उपाचार्य) श्री आनन्दऋषिजी महाराज को ओढ़ा दी। यह है आपश्री की त्याग व निस्पृहता की वृत्ति।

कठोर सत्य सदा कटु होता है। आपश्री प्रारम्भ से ही निर्भीक वक्ता, स्पष्ट चिन्तक और स्पष्टवादी रहे हैं। सत्य और नियम के साथ आपने कभी समझौता नहीं किया, भले ही वर्षों से साथ रहे अपने कहलाने वाले साथी भी साथ छोड़ कर चले गये; पर आपने सदा ही संगठन और सत्य का पक्ष लिया। एकता के लिए आपश्री के अगणित बलिदान श्रमणसंघ के गौरव को युग-युग तक बढ़ाते रहेंगे।

संगठन के बाद आपश्री की अभिरुचि काव्य, साहित्य, शिक्षा और सेवा के क्षेत्र में बढ़ती रही है। आपश्री की बहुमुखी प्रतिभा से प्रसूत सैकड़ों काव्य, हजारों पद-छन्द आज सरस्वती के शृंगार बने हुए हैं। जैन राम यशोरसायन, जैन पांडव यशोरसायन जैसे महाकाव्यों की रचना, हजारों कवित्त, स्तवन की सर्जना आपकी काव्यप्रतिभा के बेजोड़ उदाहरण हैं। आपश्री की आशुकवि-रत्न की पदवी स्वयं में सार्थक है।

कर्मग्रन्थ (छह भाग) जैसे विशाल गुरु गम्भीर ग्रन्थ पर आपश्री के निदेशन में व्याख्या, विवेचन और प्रकाशन हुआ जो स्वयं में ही एक अनूठा कार्य है। आज जैनदर्शन और कर्मसिद्धान्त के सैकड़ों अध्येता उनसे लाभ उठा रहे हैं। आपश्री के सान्निध्य में ही पंचसंग्रह (दस भाग) जैसे विशालकाय कर्मसिद्धान्त के अतीव गहन ग्रन्थ का सम्पादन विवेचन और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है, जो वर्तमान में आपश्री की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुपस्थिति में आपश्री के सुयोग्य शिष्य श्री सुकनमुनि जी के निदेशन में सम्पन्न हो रहा है।

प्रवचन, जैन उपन्यास आदि की आपश्री की पुस्तकें भी अत्यधिक लोकप्रिय हुई हैं। लगभग ६-७ हजार पृष्ठ से अधिक परिमाण में आप श्री का साहित्य आँका जाता है।

शिक्षा क्षेत्र में आपश्री की दूरदर्शिता जैन समाज के लिए वरदान-स्वरूप सिद्ध हुई है। जिस प्रकार महामना मालवीय जी ने भारतीय शिक्षा क्षेत्र में एक नई क्रांति—नया दिशादर्शन देकर कुछ अमर स्थापनाएँ की हैं, स्थानकवासी जैन समाज के शिक्षा क्षत्र में आपको भी स्थानकवासी जगत का 'मालवीय' कह सकते हैं। लोंकाशाह गुरुकुल (सादड़ी), राणावास की शिक्षा संस्थाएँ, जयतारण आदि के छात्रावास तथा अनेक स्थानों पर स्थापित पुस्तकालय, वाचनालय, प्रकाशन संस्थाएँ शिक्षा और साहित्य-सेवा के क्षेत्र में आपश्री की अमर कीर्ति गाथा गा रही हैं।

लोक-सेवा के क्षेत्र में भी मरुधरकेसरी जी महाराज भामाशाह और खेमा देदराणी की शुभ परम्पराओं को जीवित रखे हुए थे। फर्क यही है कि वे स्वयं धनपति थे, अपने धन को दान देकर उन्होंने राष्ट्र एवं समाज सेवा की, आप एक अकिंचन श्रमण थे, अतः आपश्री ने धनपतियों को प्रेरणा, कर्तव्य-बोध और मार्गदर्शन देकर मरुधरा के गांव-गांव, नगर-नगर में सेवाभावी संस्थाओं का, सेवात्मक प्रवृत्तियों का व्यापक जाल बिछा दिया।

आपश्री की उदारता की गाथा भी सैकड़ों व्यक्तियों के मुख से सुनी जा सकती है। किन्हीं भी संत, सतियों को किसी वस्तु की, उप-करण आदि की आवश्यकता होती तो आपश्री निस्संकोच, बिना किसी भेदभाव के उनको सहयोग प्रदान करते और अनुकूल साधन-सामग्री की व्यवस्था कराते। साथ ही जहाँ भी पधारते वहाँ कोई रुग्ण, असहाय, अपाहिज, जरूरतमन्द गृहस्थ भी (भले ही वह किसी वर्ण, समाज का हो) आपश्री के चरणों में पहुंच जाता तो आपश्री उसकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दयनीयता से द्रवित हो जाते और तत्काल समाज के समर्थ व्यक्तियों द्वारा उनकी उपयुक्त व्यवस्था करा देते। इसी कारण गांव-गांव में किसान, कुम्हार, ब्राह्मण, सुनार, माली आदि सभी कौम के व्यक्ति आपश्री को राजा कर्ण का अवतार मानने लग गये और आपश्री के प्रति श्रद्धावनत रहते। यही सच्चे संत की पहचान है, जो किसी भी भेदभाव के बिना मानव मात्र की सेवा में रुचि रखे, जीव मात्र के प्रति करुणाशील रहे।

इस प्रकार त्याग, सेवा, संगठन, साहित्य आदि विविध क्षेत्रों में सतत प्रवाहशील उस अजर-अमर यशोधारा में अवगाहन करने से हमें मरुधरकेसरी जी म० के व्यापक व्यक्तित्व की स्पष्ट अनुभूतियां होती हैं कि कितना विराट्, उदार, व्यापक और महान था वह व्यक्तित्व !

श्रमणसंघ और मरुधरा के उस महान संत की छत्र-छाया की हमें आज बहुत अधिक आवश्यकता थी किन्तु भाग्य की विडम्बना ही है कि विगत वर्ष १७ जनवरी, १९८४, वि० सं० २०४०, पौष शुदि १४, मंगलवार को वह दिव्यज्योति अपना प्रकाश विकीर्ण करती हुई इस धराधाम से ऊपर उठकर अनन्त असीम में लीन हो गयी थी।

पूज्य मरुधरकेसरी जी के स्वर्गवास का उस दिन का दृश्य, शव-यात्रा में उपस्थित अगणित जनसमुद्र का चित्र आज भी लोगों की स्मृति में है और शायद शताब्दियों तक इतिहास का कीर्तिमान बनकर रहेगा। जैतारण के इतिहास में क्या, संभवतः राजस्थान के इतिहास में ही किसी सन्त का महाप्रयाण और उस पर इतना अपार जन-समूह (सभी कौमों और सभी वर्ण के) उपस्थित होना यह पहली घटना थी। कहते हैं, लगभग ७५ हजार की अपार जनमेदिनी से संकुल शव-यात्रा का वह जलूस लगभग ३ किलोमीटर लम्बा था, जिसमें लगभग २० हजार तो आस-पास व गांवों के किसान बधु ही थे जो अपने ट्रेक्टरों, बैलगाड़ियों आदि पर चढ़कर आये थे। इस प्रकार उस महा-पुरुष का जीवन जितना व्यापक और विराट रहा उससे भी अधिक व्यापक और श्रद्धा परिपूर्ण रहा उसका महाप्रयाण !

उस दिव्य पुरुष के श्रीचरणों में शत-शत वन्दन !

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

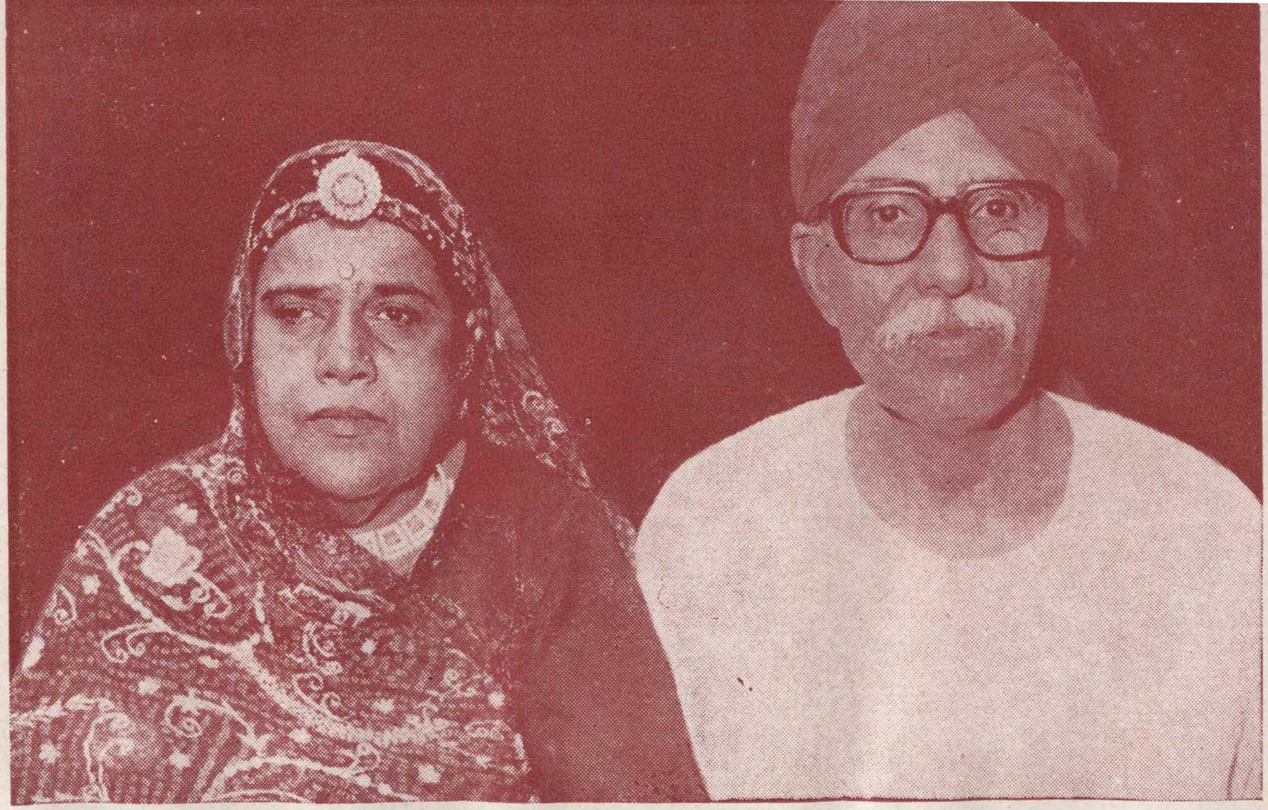

सौ० रुकमाबाई पुखराजजी मुणोत　　　　श्रीमान पुखराजजी मुणोत

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

श्रीमान् पुखराजजी ज्ञानचन्दजी मुणोत,
ताम्बरम् (मद्रास)

संसार में उसी मनुष्य का जन्म सफल माना जाता है जो जीवन में त्याग, सेवा, संयम, दान, परोपकार आदि सुकृत करके जीवन को सार्थक बनाता है। श्रीमान पुखराजजी मुणोत भी इसी प्रकार के उदार हृदय, धर्मप्रेमी, गुरुभक्त और दानवीर हैं जिन्होंने जीवन को त्याग एवं दान दोनों धाराओं में पवित्र बनाया है।

आपका जन्म वि० सं० १९७८ कार्तिक वदी ५, रणसीगांव (पीपाड़ जोधपुर) निवासी फूलचन्दजी मुणोत के घर, धर्मशीला श्रीमती कूकीबाई के उदर से हुआ। आपके दो अन्य बन्धु व तीन बहनें भी हैं।

भाई—स्व० मिश्रीमल जी मुणोत
श्री सोहनराज जी मुणोत

बहनें—श्रीमती दाकूबाई, धर्मपत्नी सायबचन्द जी गांधी, नागौर
श्रीमती तीजीबाई, धर्मपत्नी रावतमल जी गुन्देचा, हरियाणा
श्रीमती सुगनीबाई, धर्मपत्नी गंगाराम जी लूणिया, शेरगढ़

आप बारह वर्ष की आयु में ही मद्रास व्यवसाय हेतु पधार गये और सेठ श्री चन्दनमल जी सखलेचा (तिण्डीवनम्) के पास काम-काज सीखा।

आपका पाणिग्रहण श्रीमान् मूलचन्द जी लूणिया (शेरगढ़ निवासी) की सुपुत्री धर्मशीला, सौभाग्यशीला श्रीमती रुकमाबाई के साथ सम्पन्न हुआ। आप दोनों की ही धर्म के प्रति विशेष रुचि, दान, अतिथि-सत्कार व गुरु भक्ति में विशेष लगन रही है।

ई० सन् १९५० में आपने ताम्बरम् में स्वतन्त्र व्यवसाय प्रारम्भ किया। प्रामाणिकता के साथ परिश्रम करना और सबके साथ सद्व्यवहार रखना आपकी विशेषता है। करीब २० वर्षों से आप नियमित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक तथा चउविहार करते हैं । चतुर्दशी का उपवास तथा मासिक आयम्बिल भी करते हैं । आपने अनेक अठाइयाँ, पंचोले, तेले, आदि तपस्या भी की हैं । ताम्बरम् में जैन स्थानक एवं पाठशाला के निर्माण में आपने तन-मन-धन से सहयोग प्रदान किया । आप एस० एस० जैन एसोसियेशन ताम्बरम् के कोषाध्यक्ष हैं ।

आपके सुपुत्र श्रीमान् ज्ञानचन्द जी एक उत्साही कर्तव्यनिष्ठ युवक हैं । माता-पिता के भक्त तथा गुरुजनों के प्रति असीम आस्था रखते हुए, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सेवा कार्यों में सदा सहयोग प्रदान करते हैं । श्रीमान् ज्ञानचन्दजी की धर्मपत्नी सौ० खमाबाई (सुपुत्री श्रीमान पुखराज जी कटारिया राणावास) भी आपके सभी कार्यों में भरपूर सहयोग करती हैं ।

इस प्रकार यह भाग्यशाली मुणोत परिवार स्व० गुरुदेव श्री मरुधर केशरी जी महाराज के प्रति सदा से असीम आस्थाशील रहा है । विगत मेडता (वि० सं० २०३९) चातुर्मास में श्री सूर्य मुनिजी की दीक्षा प्रसंग (आसोज सुदी १०) पर श्रीमान पुखराज जी ने गुरुदेव को उम्र के वर्षों जितनी विपुल धन राशि पंच संग्रह प्रकाशन में प्रदान करने की घोषणा की । इतनी उदारता के साथ सत् साहित्य के प्रचार-प्रसार में सांस्कृतिक रुचि का यह उदाहरण वास्तव में ही अनुकरणीय व प्रशंसनीय है । श्रीमान ज्ञानचन्द जी मुणोत की उदारता, सज्जनता और दानशीलता वस्तुतः आज के युवक समाज के समक्ष एक प्रेरणा प्रकाश है ।

हम आपके उदार सहयोग के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए आपके समस्त परिवार की सुख-समृद्धि की शुभ कामना करते हैं । आप इसी प्रकार जिनशासन की प्रभावना करते रहें—यही मंगल कामना है ।

मन्त्री—

पूज्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान

जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

श्रीमद्देवेन्द्रसूरि विरचित कर्मग्रन्थों का सम्पादन करने के सन्दर्भ में जैन कर्मसाहित्य के विभिन्न ग्रन्थों के अवलोकन करने का प्रसंग आया। इन ग्रन्थों में श्रीमदाचार्य चन्द्रर्षि महत्तरकृत 'पंचसंग्रह' प्रमुख है।

कर्मग्रन्थों के सम्पादन के समय यह विचार आया कि पंचसंग्रह को भी सर्वजन सुलभ, पठनीय बनाया जाये। अन्य कार्यों में लगे रहने से तत्काल तो कार्य प्रारम्भ नहीं किया जा सका। परन्तु विचार तो था ही और पालो (मारवाड़) में विराजित पूज्य गुरुदेव मरुधरकेसरी, श्रमणसूर्य श्री मिश्रीमल जी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुआ एवं निवेदन किया—

भन्ते ! कर्मग्रन्थों का प्रकाशन तो हो चुका है, अब इसी क्रम में पंचसंग्रह को भी प्रकाशित कराया जाये।

गुरुदेव ने फरमाया—विचार प्रशस्त है और चाहता भी हूँ कि ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित हों, मानसिक उत्साह होते हुए भी शारीरिक स्थिति साथ नहीं दे पाती है। तब मैंने कहा—आप आदेश दीजिये। कार्य करना ही है तो आपके आशीर्वाद से सम्पन्न होगा ही, आपश्री की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन से कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

'तथास्तु' के मांगलिक के साथ ग्रन्थ की गुरुता और गम्भीरता को सुगम बनाने हेतु अपेक्षित मानसिक श्रम को नियोजित करके कार्य प्रारम्भ कर दिया। 'शनैःकंथा' की गति से करते-करते आधे से अधिक ग्रन्थ गुरुदेव के बगड़ी सज्जनपुर चातुर्मास तक तैयार करके सेवा में उपस्थित हुआ। गुरुदेवश्री ने प्रमोदभाव व्यक्त कर फरमाया चरैवेति-चरैवेति।

इसी बीच शिवशर्मसूरि विरचित 'कम्मपयडी' (कर्मप्रकृति) ग्रन्थ के सम्पादन का अवसर मिला। इसका लाभ यह हुआ कि बहुत से जटिल माने जाने वाले स्थलों का समाधान सुगमता से होता गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थबोध की सुगमता के लिए ग्रन्थ के सम्पादन में पहले मूलगाथा और यथाक्रम शब्दार्थ, गाथार्थ के पश्चात् विशेषार्थ के रूप में गाथा के हार्द को स्पष्ट किया है। यथास्थान ग्रन्थातरों, मतान्तरों के मन्तव्यों का टिप्पण के रूप में उल्लेख किया है।

इस समस्त कार्य की सम्पन्नता पूज्य गुरुदेव के वरद आशीर्वादों का सुफल है। एतदर्थ कृतज्ञ हूं। साथ ही मरुधरारत्न श्री रजतमुनि जी एवं मरुधराभूषण श्री सुकनमुनिजी का हार्दिक आभार मानता हूँ कि कार्य की पूर्णता के लिए प्रतिसमय प्रोत्साहन एवं प्रेरणा का पाथेय प्रदान किया।

ग्रन्थ की मूल प्रति प्राप्ति के लिए श्री लालभाई दलपतभाई संस्कृति विद्यामन्दिर अहमदाबाद के निदेशक एवं साहित्यानुरागी श्री दलसुखभाई मालवणिया का सस्नेह आभारी हूं। साथ ही वे सभी धन्यवादार्ह हैं, जिन्होंने किसी न किसी रूप में अपना-अपना सहयोग दिया है।

ग्रन्थ के विवेचन में पूरी सावधानी रखी है और ध्यान रखा है कि सैद्धान्तिक भूल, अस्पष्टता आदि न रहे एवं अन्यथा प्ररूपणा भी न हो जाये। फिर भी यदि कहीं चूक रह गई हो तो विद्वान पाठकों से निवेदन है कि प्रमादजन्य स्खलना मानकर त्रुटि का संशोधन, परिमार्जन करते हुए सूचित करें। उनका प्रयास मुझे ज्ञानवृद्धि में सहायक होगा। इसी अनुग्रह के लिए सानुरोध आग्रह है।

भावना तो यही थी कि पूज्य गुरुदेव अपनी कृति का अवलोकन करते, लेकिन सम्भव नहीं हो सका। अतः 'कालाय तस्मै नमः' के साथ-साथ विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में—

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्प्यते।

के अनुसार उन्हीं को सादर समर्पित है।

खजांची मोहल्ला
बीकानेर, ३३४००१

विनीत
देवकुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राक्कथन

यह पंचसंग्रह का उदीरणाकरण अधिकार है। उदय की भाँति उदीरणा भी कर्मफल की व्यक्तता का नाम है। अर्थात् विपाक-वेदन की दृष्टि से तो उदय और उदीरणा में समानता है, लेकिन उदीरणा की इतनी विशेषता है कि आत्मिक परिणामों के द्वारा कर्म को अपने समय से पूर्व ही उदयाभिमुख कर दिया जाता है अथवा अपकर्षण द्वारा अपने विपाक काल से पूर्व ही उदय में ले आया जाता है। इसी कारण उदीरणा का विचार पृथक् से किया जाता है।

उदारणा में आत्म-परिणामों की मुख्यता है। इसी आशय को स्पष्ट करने के लिये करण शब्द को उदीरणा के साथ संबद्ध किया है। आत्मपरिणामों की विशेष क्रिया के द्वारा उदयमुखेन अनुभव कर लेने के बाद कर्मस्कन्ध कर्मरूपता को छोड़कर अन्य पुद्गल रूप में परिणमन कर जाता है। जब कि उदय में अपनी स्वाभाविक एक प्रक्रिया के अनुसार कर्मस्कन्ध स्थितिक्षय को प्राप्त होकर अपना-अपना फल देते हैं। इसके साथ ही उदय और उदीरणा में एक अन्तर और है कि उदय उदयावलिकागत कर्मस्कन्धों का होता है तथा उदीरणा सत्तागत कर्मस्कन्धों की होती है। उदयावलिकागत कर्मस्कन्धों में उदीरणाकरण के द्वारा किसी प्रकार का परिवर्तन किया जाना संभव नहीं है।

उदीरणा सम्बन्धी विवेचन बंधविधि प्ररूपणा अधिकार में भी किया है और जो वर्णन वहाँ नहीं किया जा सका, उसका यहाँ कथन किया है। इसलिये यदि उदीरणा सम्बन्धी क्रिया का पूर्णरूपेण परिज्ञान करना हो तो बंधविधि अधिकार के साथ इस उदीरणाकरण अधिकार को जोड़कर अध्ययन करना चाहिये।

प्रस्तुत अधिकार में उदीरणा सम्बन्धी निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदय के समान ही प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के प्रकार क्रम से उदीरणा का विचार किया है।

प्रकृत्युदीरणा का वर्णन लक्षण, भेद, साद्यादि निरूपण और स्वामित्व इन चार प्रकार द्वारा किया है।

तदनन्तर लक्षण, भेद, साद्यादि प्ररूपणा, अद्धाच्छेद और स्वामित्व इन पांच अर्थाधिकारों द्वारा स्थित्युदीरणा का निरूपण किया है। स्वामित्व और अद्धाच्छेद का वर्णन प्रायः स्थितिसंक्रम के समान है। किन्तु जिन प्रकृतियों के बारे में जो विशेष है, उसका स्पष्टीकरण यथाक्रम से यहां किया है।

अनुभागोदीरणा के छह विचारणीय विषय हैं—१. संज्ञा, २. शुभाशुभ, ३. विपाक, ४. हेतु, ५. साद्यादि और ६. स्वामित्व। इनमें से संज्ञा, शुभाशुभत्व, विपाक और हेतु के अवान्तर प्रकारों द्वारा विस्तृत विचार किया है। बंध और उदय के प्रसंग में भी इनका विचार किया है, लेकिन अनुभागोदीरणा के विषय में जो कुछ विशेष है, उसका पृथक से निर्देश कर दिया है।

प्रदेशोदीरणा के विचार के दो अर्थाधिकार हैं—साद्यादि और स्वामित्व प्ररूपणा।

इस प्रकार से प्रकरण में उदीरणाकरण सम्बन्धी विषयों का विचार नवासी गाथाओं में है। जिनमें से एक से चौबीस तक की गाथाओं में प्रकृत्युदीरणा का, पच्चीस से उनतालीस तक की गाथाओं में स्थित्युदीरणा का, चालीस से अस्सी तक की गाथाओं में अनुभागोदीरणा का और इक्यासी से नवासी तक की गाथाओं में प्रदेशोदीरणा का विचार किया है। इस समग्र वर्णन का सुगम बोध कराने के लिये परिशिष्ट में सम्बन्धित प्रारूप दिये हैं।

प्राक्कथन के रूप में अधिकार के वर्ण्य विषयों की संक्षेप में रूपरेखा अंकित की है। समग्र वर्णन के लिये पाठकगण अधिकार का अध्ययन करें। विज्ञेषु किं बहुना।

सम्पादक

देवकुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

गाथा १ — ३—४

प्रकृत्युदीरणा सम्बन्धी विचारणीय विषय — ३

उदीरणा का लक्षण और भेद — ४

गाथा २ — ४—६

मूल प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा — ५

गाथा ३ — ६—७

अध्रुवोदया उत्तरप्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा — ७

ध्रुवोदया उत्तरप्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा — ७

गाथा ४ — ८

मूल प्रकृतियों सम्बन्धी उदीरणा स्वामित्व — ८

गाथा ५ — ९—१०

उपघात, पराघात, साधारण, प्रत्येक नाम का उदीरणा स्वामित्व — ९

दर्शनावरणचतुष्क ज्ञानावरण-अन्तरायदशक का उदीरणा स्वामित्व — १०

गाथा ६ — १०—११

स्थावरत्रिक, त्रसत्रिक, आयुचतुष्क, गतिचतुष्क, जातिपंचक, दर्शनमोहत्रिक, वेदत्रिक, आनुपूर्वी-चतुष्क का उदीरणा स्वामित्व — ११

गाथा ७ — ११—१२

औदारिकषट्क और औदारिक अंगोपांग का उदीरणा स्वामित्व — १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ८, ९ — १२—१३

वैक्रियसप्तक एवं आहारकसप्तक का उदीरणा स्वामित्व — १३

गाथा १० — १४

ध्रुवोदया नाम कर्म की तेतीस प्रकृतियों एवं सूक्ष्म-लोभ का उदीरणा स्वामित्व — १४

गाथा ११ — १५

संस्थानषट्क एवं संहननषट्क का उदीरणा स्वामित्व — १५

गाथा १२, १३ — १७—१८

संहनन, संस्थान नामकर्म का उदीरणा स्वामित्व-सम्बन्धी विशेष स्पष्टीकरण — १६

आतपनाम का उदीरणा स्वामित्व — १७

गाथा १४ — १७—१८

उद्योतनाम का उदीरणा स्वामित्व — १८

गाथा १५ — १८—१९

विहायोगतिद्विक और स्वरद्विक का उदीरणा स्वामित्व — १८

गाथा १६ — १९—२०

उच्छ्वास नाम एवं स्वरद्विक का उदीरणा स्वामित्व — १९

गाथा १७ — २०

यशःकीर्ति, आदेय और सुभग नाम का उदीरणा स्वामित्व — २०

गाथा १८ — २१

उच्चगोत्र, नीचगोत्र, दुर्भगचतुष्क, तीर्थंकरनाम का उदीरणा स्वामित्व — २१

गाथा १९ — २१—२३

निद्राद्विक और वेदनीयद्विक का उदीरणा स्वामित्व — २२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा २० — २३—२४
स्त्यानर्द्धित्रिक और कषायों का उदीरणा स्वामित्व — २४
गाथा २१ — २४—२५
युगलद्विक एवं वेदनीयद्विक का उदीरणा स्वामित्व — २५
गाथा २२ — २५—२६
हास्यषट्क का उदीरणा स्वामित्व — २६
गाथा २३ — २६—२७
घातिकर्म प्रकृतियों का उदीरणा स्वामित्व — २६
गाथा २४ — २७—२८
अयोगी गुणस्थान सम्बन्धी प्रकृतिस्थानों को छोड़कर नाम और गोत्र कर्म के शेष प्रकृतिस्थानों और वेदनीय, आयु कर्म का उदीरणा स्वामित्व — २७
स्थिति उदीरणा के अर्थाधिकारों के नाम — २८
गाथा २५ — २९—३०
स्थिति-उदीरणा का लक्षण और भेद — २९
गाथा २६ — ३१—३३
स्थिति उदीरणापेक्षा मूल प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा — ३१
गाथा २७ — ३३—३५
उत्तर प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा — ३४
गाथा २८ — ३५—३६
स्वामित्व और अद्धाच्छेद सम्बन्धी सामान्य नियम — ३६
गाथा २९ — ३६—३९
सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और उदयबंधोत्कृष्टा प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिउदीरणा स्वामित्व — ३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ३० ३९—४५

मनुष्यानुपूर्वी, आहारकसप्तक, देवद्विक, सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक और आतप नाम का उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा स्वामित्व ३९

अनुदय बंधोत्कृष्टा प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा स्वामित्व ४३

उदय संक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा स्वामित्व ४५

गाथा ३१ ४६—४७

तीर्थंकरनाम का उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा स्वामित्व ४६

गाथा ३२ ४७—४९

भय, जुगुप्सा, आतप, उद्योत, सर्वघाति कषाय और निद्रापंचक का जघन्य स्थिति उदीरणा स्वामित्व ४७

गाथा ३३ ४८—५१

एकेन्द्रियप्रायोग्य प्रकृतियों का जघन्य स्थिति उदीरणा स्वामित्व ४९

विकलत्रिक जाति का जघन्य स्थिति उदीरणा स्वामित्व ५०

गाथा ३४ ५१—५४

दुर्भगत्रिक, नीच गोत्र, तिर्यंचद्विक, अंतिम पांच संहनन, युगलद्विक, मनुष्यानुपूर्वी, अपर्याप्त नाम, वेदनीयद्विक का जघन्य स्थिति उदीरणा स्वामित्व ५१

गाथा ३५ ५४—५६

वैक्रिय अंगोपांग, नरकद्विक, देवद्विक का जघन्य स्थिति उदीरणा स्वामित्व ५५

गाथा ३६ ५६

वेदत्रिक, दृष्टिद्विक, संज्वलनचतुष्क का जघन्य स्थिति उदीरणा स्वामित्व ५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ३७ ५७—५६

मिश्रमोहनीय और वैक्रियषट्क का जघन्य स्थिति उदीरणा स्वामित्व ५८

गाथा ३८ ५६—६०

आहारकद्विक का जघन्य स्थिति उदीरणा स्वामित्व ५६

गाथा ३६ ६०—६२

ज्ञानावरणपंचक, दर्शनावरणचतुष्क, अंतरायपंचक का जघन्य स्थिति उदीरणा स्वामित्व ६१

चरमोदया पैंसठ प्रकृतियों का जघन्य स्थिति उदीरणा स्वामित्व ६१

आयुचतुष्क का जघन्य स्थिति उदीरणा स्वामित्व ६२

गाथा ४० ६२—६३

अनुभागोदीरणा के विचारणीय विषय ६३

संज्ञा, शुभाशुभत्व, विपाक हेतु सम्बन्धी सामान्य निर्देश ६३

गाथा ४१ ६४—६६

वेदत्रिक, अंतराय, चक्षु, अचक्षु दर्शनावरण, सम्यक्त्वमोहनीय, मनपर्ययज्ञानावरण सम्बन्धी संज्ञा संबंधी विशेष वक्तव्य ६४

गाथा ४२ ६६

देशघाति प्रकृतियों का घातित्व विषयक विशेष ६६

गाथा ४३ ६७

सर्वघाति प्रकृतियों का घातित्व और स्थान सम्बन्धी निरूपण ६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ४४, ४५ ६८

अघाति प्रकृतियों का स्थानाश्रित विशेष ६८

गाथा ४६ ६९—७०

शुभाशुभत्व विषयक विशेष ६९

गाथा ४७ ७१—७२

मोहनीय, ज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और
वीर्यान्तराय सम्बन्धी विपाकाश्रित विशेष ७१

गाथा ४८ ७२—७३

चक्षुदर्शनावरण, आदि अन्तरायचतुष्क,
अवधिद्विकावरण सम्बन्धी विपाकाश्रित विशेष ७२

गाथा ४९ ७४—७५

पूर्वोक्त से शेष प्रकृतियों का विपाकाश्रित विशेष ७४

प्रत्यय प्ररूपणा के भेद ७४

गाथा ५० ७६

सुस्वर, मृदु, लघुस्पर्श, पराघात, उद्योत,
प्रशस्तविहायोगति, समचतुरस्र संस्थान,
प्रत्येकनाम के अनुभागोदीरणा प्रत्यय ७६

गाथा ५१ ७७—७८

सुभगत्रिक, उच्च गोत्र, नवनोकषाय के अनुभागोदीरणा
प्रत्यय ७७

गाथा ५२ ७८—७९

भव और परिणाम निमित्तक प्रकृतियों के अनुभागो-
दीरणा प्रत्यय ७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ५३ ७९—८०

तीर्थंकरनाम और घाति प्रकृतियों के अनुभागोदीरणा प्रत्यय ७९

गाथा ५४, ५५ ८०—८३

अनुभागोदीरणापेक्षा मूल प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा ८०

गाथा ५६ ८४—८५

कर्कश, गुरु, मृदु, लघु स्पर्श एवं शुभ ध्रुवोदया बीस प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा ८४

गाथा ५७ ८५—८६

अशुभ ध्रुवोदया प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा ८५

गाथा ५८ ८७—८८

अंतरायपंचक, चक्षु-अचक्षु दर्शनावरण का उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा स्वामित्व ८७

गाथा ५९ ८८—८९

निद्रापंचक, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, असातावेदनीय का उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा स्वामित्व ८९

गाथा ६० ८९-९०

पंचेन्द्रियजाति, त्रसत्रिक, सातावेदनीय, सुस्वर, देवगति, वैक्रिय सप्तक, उच्छ्‌वास नाम का उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा स्वामित्व ९०

गाथा ६१ ९०—९१

सम्यक्त्व, मिश्र मोहनीय, हास्य, रति का उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा स्वामित्व ९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ६२ — ६१

नरकगति, हुंड संस्थान, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वरचतुष्क, नीच गोत्र का उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा स्वामित्व — ६१

गाथा ६३ — ६२—६३

कर्कश, गुरु स्पर्श, अंतिम पांच संहनन, स्त्री-पुरुष वेद, मध्यम संस्थानचतुष्क, तिर्यंचगति नाम का उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा स्वामित्व — ६२

गाथा ६४ — ६२—६३

मनुष्यगति, प्रथम संहनन, औदारिकसप्तक, आयुचतुष्क का उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा स्वामित्व — ६२

गाथा ६५ — ६३—६४

आद्य जातिचतुष्क, सूक्ष्म, साधारण, स्थावर नाम का उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा स्वामित्व — ६३

गाथा ६६ — ६४

आदि संस्थान, मृदु-लघुस्पर्श, प्रत्येक, प्रशस्त विहायोगति, पराघात, आहारकसप्तक का उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा स्वामित्व — ६४

गाथा ६७ — ६५—६६

आतप, उद्योत, आनुपूर्वीचतुष्क का उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा स्वामित्व — ६५

गाथा ६८ — ६६—६७

पूर्वोक्त शेष शुभ एवं अशुभ प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा स्वामित्व — ६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ६९ — ९७—९९

मति-श्रुत ज्ञानावरण, चक्षु-अचक्षु दर्शनावरण, अवधिद्विकावरण और मनपर्यायज्ञानावरण का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व — ९८

गाथा ७० — ९९—१००

अंतरायपंचक, केवलावरणद्विक, संज्वलन कषाय, नवनोकषाय, निद्राद्विक का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व — ९९

गाथा ७१ — १००—१०१

स्त्यानर्द्धित्रिक, वेदक सम्यक्त्व का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व — १००

गाथा ७२ — १०१—१०३

मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधिचतुष्क, आदि की बारह कषाय, मिश्रमोहनीय, आयुचतुष्क का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व — १०२

गाथा ७३ — १०३—१०४

पुद्गलविपाकी प्रकृतियों का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व — १०४

गाथा ७४ — १०४—१०५

औदारिक एवं वैक्रिय अंगोपांग का जघन्य अनुभागोदीरणा का स्वामित्व — १०४

गाथा ७५ — १०५—१०६

ध्रुवोदया शुभ बीस प्रकृतियों और आहारक सप्तक का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व — १०५

गाथा ७६ — १०६—१०७

आदि संहननपंचक और आदि संस्थानपंचक का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व — १०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ७७ १०७—१०८
हुंडसंस्थान, उपघात, साधारण, पराघात, आतप, उद्योत का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व १०७
गाथा ७८ १०८
सेवार्त संहनन, मृदु-लघु स्पर्श, प्रत्येक नाम का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व १०८
गाथा ७९ १०९—११०
कर्कश, गुरुस्पर्श, अशुभ ध्रुवोदया नामनवक, तीर्थंकर नाम का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व १०९
गाथा ८० ११०—११२
पूर्वोक्त से शेष प्रकृतियों का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व ११०
समस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट-जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व का बोधक नियम ११०
गाथा ८१ ११२—११४
प्रदेशोदीरणा के अर्थाधिकार ११२
मूल प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा ११३
गाथा ८२ ११४—११६
उत्तर प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा ११५
गाथा ८३ ११६—११९
घाति प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा स्वामित्व ११६
गाथा ८४ ११९
वेदनीय, अंतिम संहननपंचक, वैक्रियसप्तक, आहारक-सप्तक, उद्योत नाम का उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा स्वामित्व ११९
गाथा ८५ ११९—१२०
तिर्यंचगति, आनुपूर्वीचतुष्क, नरक-देवगति, दुर्भग-चतुष्क, नीच गोत्र का उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा स्वामित्व १२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा ८६ १२०—१२१

आयुचतुष्क का उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा स्वामित्व १२१

गाथा ८७ १२१—१२२

एकान्त तिर्यंच उदयप्रायोग्य प्रकृतियों व अपर्याप्त नाम का उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा स्वामित्व १२२

गाथा ८८ १२२—१२३

सयोगि केवली गुणस्थान उदययोग्य प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा स्वामित्व १२३

अंतरायपंचक, सम्यक्त्वमोहनीय का उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा स्वामित्व १२३

गाथा ८९ १२४—१२६

समस्त उत्तर प्रकृतियों का जघन्य अनुभागोदीरणा स्वामित्व १२४

परिशिष्ट—

१ उदीरणाकरण-प्ररूपणा अधिकार : मूल गाथाएँ १२७

२ गाथानुक्रमणिका १३५

३ प्रकृत्युदीरणापेक्षा मूलप्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा स्वामित्व १३९

४ प्रकृत्युदीरणापेक्षा उत्तर प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा स्वामित्व १४०

५ स्थित्युदीरणापेक्षा मूल प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा का प्रारूप १४७

६ स्थिति उदीरणापेक्षा उत्तर प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा का प्रारूप १४८

७ मूलप्रकृतियों का स्थिति—उदीरणा प्रमाण एवं सामित्व १५१

८ उत्तरप्रकृतियों का स्थिति—उदीरणा प्रमाण एवं स्वामित्व १५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९ अनुभागोदीरणापेक्षा मूलप्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा दर्शक प्रारूप १६२
१० अनुभागोदीरणापेक्षा उत्तरप्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा दर्शक प्रारूप १६३
११ अनुभागोदीरणापेक्षा मूल प्रकृतियों का घातित्व स्वामित्व दर्शक प्रारूप १६६
१२ अनुभागोदीरणापेक्षा उत्तरप्रकृतियों की घाति, स्थान एवं विपाकित्व प्ररूपणा दर्शक प्रारूप १६७
१३ अनुभागोदीरणापेक्षा उत्तरप्रकृतियों के उत्कृष्ट, जघन्य अनुभागस्वामित्व का प्रारूप १७२
१४ प्रदेशोदीरणापेक्षा मूल प्रकृतियों की साद्यादि एवं स्वामित्व प्ररूपणा का प्रारूप १८१
१५ प्रदेशोदीरणापेक्षा उत्तरप्रकृतियों की साद्यादि एवं स्वामित्व प्ररूपणा दर्शक प्रारूप १८३
● स्थिति उदीरणा में अद्धाच्छेद का प्रारूप (चार्ट)

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमदाचार्य चन्द्रर्षिमहत्तर-विरचित

पंचसंग्रह

(मूल, शब्दार्थ तथा विवेचनयुक्त)

उदीरणाकरण-प्ररूपणा अधिकार

८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. उदीरणाकरण-प्ररूपणा अधिकार

संक्रम, उद्‌वर्तना तथा अपवर्तना करण का विवेचन करने के अनन्तर अब क्रमप्राप्त उदीरणाकरण की व्याख्या प्रारंभ करते हैं।

प्रकृत्युदीरणा

उदीरणाकरण में विचारणीय विषय इस प्रकार हैं—लक्षण, भेद, साद्यादि निरूपण एवं स्वामित्व। उनमें से पहले लक्षण और भेद का प्रतिपादन करते हैं।

लक्षण और भेद

जं करणेणोकड्ढिय दिज्जइ उदए उदीरणा एसा।
पगतिट्ठितिमाइ चउहा मूलुत्तरभेयओ दुविहा ॥१॥

शब्दार्थ—**जं**—जो, **करणेणोकड्ढिय**—करण द्वारा उत्कीर्ण करके—खींच कर, **दिज्जइ**—दिये जाते हैं, **उदए**—उदय में, **उदीरणा**—उदीरणा, **एसा**—यह, **पगतिट्ठितिमाइ**—प्रकृति, स्थिति आदि, **चउहा**—चार प्रकार की, **मूलुत्तरभेयओ**—मूल और उत्तर प्रकृतियों के भेद से, **दुविहा**—दो प्रकार की।

गाथार्थ—करण द्वारा उत्कीर्ण करके—खींचकर जो कर्मदलिक उदय में दिये जाते हैं, यह उदीरणा है। वह प्रकृति, स्थिति आदि के भेद से चार प्रकार की है तथा मूल और उत्तर प्रकृति के भेद से उनके दो-दो प्रकार हैं।

विशेषार्थ—गाथा के पूर्वार्ध द्वारा उदीरणा के लक्षण और उत्तरार्ध द्वारा भेदों का निरूपण किया है। उदीरणा का लक्षण इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'कषाययुक्त अथवा कषायवियुक्त जिस वीर्यप्रवृत्ति द्वारा उदयावलिका से बहिवर्ती—ऊपर के स्थानों में वर्तमान कर्मपरमाणु उत्कीर्ण करके—खींचकर उदयावलिका में निक्षिप्त किये जाते हैं, अर्थात् उदयावलिका के स्थानों में रहे हुए दलिकों के साथ भोगने योग्य किये जाते हैं, उसे उदीरणा कहते हैं ।[1]

वह उदीरणा प्रकृति, स्थिति आदि के भेद से चार प्रकार की है। यथा—१ प्रकृत्युदीरणा, २ स्थित्युदीरणा, ३ अनुभागोदीरणा और ४ प्रदेशोदीरणा तथा उदीरणा के ये चारों प्रकार भी प्रत्येक मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृति के भेद से दो-दो प्रकार के हैं। मूल प्रकृतियां आठ और उत्तर प्रकृतियां एक सौ अट्ठावन हैं।

इस तरह उदीरणा का लक्षण और भेदों का प्रतिपादन करने के पश्चात् अब साद्यादि प्ररूपणा करते हैं। उसके दो प्रकार हैं—१ मूल प्रकृतिविषयक और २ उत्तर प्रकृतिविषयक। इन दोनों में से पहले मूल कर्म-प्रकृतिविषयक साद्यादि की प्ररूपणा करते हैं।

मूल प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा

वेयणीय मोहणीयाण होइ चउहा उदीरणाउस्स ।
साइ अधुवा सेसाण साइवज्जा भवे तिविहा ॥२॥

शब्दार्थ—**वेयणीय मोहणीयाण**—वेदनीय और मोहनीय की, **होइ**—है, **चउहा**—चार प्रकार की, **उदीरणाउस्स**—उदीरणा आयु की, **साइ अधुवा**—सादि और अध्रुव, **सेसाण**—शेष की, **साइवज्जा**—आदि के सिवाय, **भवे**—है, **तिविहा**—तीन प्रकार की।

गाथार्थ—वेदनीय और मोहनीय की उदीरणा चार प्रकार की है। आयु की सादि और अध्रुव तथा शेष कर्मों की सादि के सिवाय तीन प्रकार की है।

---

१ उदयावलिबाहिरिल्लठिईहिंतो कसाय सहिएणं असहिएणं वा जोगसण्णेणं करणेणं दलियमोकड्ढिय उदयावलियाए पवेसणं उदीरणत्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—मूल प्रकृतियां आठ हैं। जिनकी सादि-अनादि प्ररूपणा में विशेषता है, उसका तो पृथक् और शेष के लिये सामान्य निर्देश कर दिया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है —

वेदनीय और मोहनीय कर्म की उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस प्रकार—वेदनीयकर्म की उदीरणा छठे प्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त होती है और उसके बाद तद्योग्य अध्यवसायों का अभाव होने से नहीं होती है तथा मोहनीयकर्म की उदीरणा क्षपकश्रेणि में चरम आवलिका न्यून सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान के कालपर्यन्त होती है और उसके बाद नहीं होती है। जिससे अप्रमत्तसंयत आदि गुणस्थान से गिरने पर वेदनीय की और उपशांतमोहगुणस्थान से गिरने पर मोहनीय की उदीरणा प्रारम्भ होती है, इसलिये वह सादि है, अभी तक जिसने उस-उस गुणस्थान को प्राप्त नहीं किया, उसके अनादि, अभव्य की अपेक्षा ध्रुव और भव्य की अपेक्षा अध्रुव है।

आयु की उदीरणा सादि और अध्रुव है। क्योंकि उदयावलिका सकल करण के अयोग्य होने से पर्यन्त आवलिका में आयुकर्म की उदीरणा अवश्य नहीं होती है। इसलिये अध्रुव-सांत है और पुनः परभव में उत्पत्ति के प्रथम समय में प्रवर्तमान होने से सादि है।

उक्त तीन प्रकृतियों से शेष रही ज्ञानावरण, दर्शनावरण, नाम, गोत्र और अंतराय इन पांच मूल कर्म प्रकृतियों की उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। वह इस प्रकार—ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय की उदीरणा बारहवें क्षीणमोहगुणस्थान की चरम आवलिका शेष न रहे, वहाँ तक सर्व जीवों को और नाम तथा गोत्र की उदीरणा सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय पर्यन्त सर्व जीवों को अवश्य होती है, इसलिये इन पांच मूल कर्म प्रकृतियों की उदीरणा अनादि है। उन गुणस्थानों से पतन का अभाव होने से सादि नहीं है। अभव्य की अपेक्षा ध्रुव और भव्य जो बारहवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त कर उस-उस कर्म की उदीरणा का नाश करेंगे, उनकी अपेक्षा अध्रुव है।

उक्त कथन का सारांश यह है कि—

१—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, नाम, गोत्र और अंतराय इन पांच कर्मों की उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है।

२—वेदनीय और मोहनीय इन दो कर्म प्रकृतियों की उदीरणा के सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव ये चारों विकल्प हैं।

३—आयुकर्म की उदीरणा सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकार की है।

इस प्रकार से मूल कर्म विषयक साद्यादि प्ररूपणा का आशय जानना चाहिये। अब उत्तर प्रकृतियों सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा का निरूपण करते हैं।

उत्तर प्रकृतियों की उदीरणा सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा

अधुवोदयाण दुविहा मिच्छस्स चउव्विहा तिहण्णासु।
मूलुत्तरपगईणं भणामि उद्दीरगा एत्तो ॥३॥

शब्दार्थ—**अधुवोदयाण**—अध्रुवोदया प्रकृतियों की, **दुविहा**—दो प्रकार की, **मिच्छस्स**—मिथ्यात्व की, **चउव्विहा**—चार प्रकार की, **तिहण्णासु**—अन्य में (ध्रुवोदया प्रकृतियों में) तीन प्रकार की, **मूलुत्तरपगईणं**—मूल और उत्तर प्रकृतियों के, **भणामि**—कहूंगा, **उद्दीरगा**—उदीरक, **एत्तो**—अब यहाँ से।

गाथार्थ—अध्रुवोदया प्रकृतियों की उदीरणा दो प्रकार की है। ध्रुवोदया प्रकृतियों में मिथ्यात्व की चार प्रकार की और अन्य प्रकृतियों की उदीरणा तीन प्रकार की है। अब मूल और उत्तर प्रकृतियों के उदीरकों को कहूंगा।

विशेषार्थ—उदय होने पर उदीरणा होती है और उदय प्रकृतियों के दो प्रकार हैं—ध्रुवोदया और अध्रुवोदया। इन दोनों प्रकारों की उदीरणा के सादि आदि विकल्पों का विवरण इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्व, घातिकर्म की चौदह और नामकर्म की तेईस, इस तरह कुल अड़तालीस ध्रुवोदया प्रकृतियों को छोड़कर शेष एक सौ दस अध्रुवोदया प्रकृतियों की उदीरणा अध्रुवोदया होने से सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकार की है।

ध्रुवोदया प्रकृतियों में से मिथ्यात्व की उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस प्रकार— जिसने सम्यक्त्व प्राप्त किया है, उसके मिथ्यात्व का उदय नहीं होने से मिथ्यात्व की उदीरणा नहीं होती है, इसलिये सांत है। सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व में जाने वाले, प्राप्त करने वाले के पुनः उदीरणा होती है अतः सादि है, अभी तक जिसने सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया उसकी अपेक्षा अनादि तथा किसी भी काल में सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करने वाला होने से अभव्य की अपेक्षा ध्रुव— अनन्त और भव्य की अपेक्षा अध्रुव है।

ज्ञानावरणपंचक, दर्शनावरणचतुष्क, अंतरायपंचक, अस्थिर, स्थिर, शुभ, अशुभ, तैजससप्तक, अगुरुलघु, वर्णादि बीस और निर्माण कुल मिलाकर इन सैंतालीस प्रकृतियों की उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। जो इस प्रकार—ये सैंतालीस प्रकृतियां ध्रुवोदया होने से अनादि काल से सभी जीवों को इनकी उदीरणा प्रवर्तमान है। इसलिये अनादि है और अभव्यों के अनन्त काल पर्यन्त प्रवर्तमान रहने वाली होने से ध्रुव अनन्त है तथा जो भव्य जीव ऊपर के गुणस्थानों में जाकर उपर्युक्त प्रकृतियों की उदीरणा का विच्छेद करेंगे उनकी अपेक्षा अध्रुव-सांत है। इनमें से ज्ञानावरणपंचक, दर्शनावरणचतुष्क और अंतरायपंचक की उदीरणा बारहवें गुणस्थान तक होती है और नामकर्म की तेतीस प्रकृतियों की उदीरणा तेरहवें गुणस्थान के चरम समय पर्यन्त होती है, उसके बाद उनका विच्छेद हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से उत्तर प्रकृतियों सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा का आशय जानना चाहिये। अब गाथोक्त निर्देशानुसार कौन जीव किन मूल और उत्तर कर्म प्रकृतियों का उदीरक होता है, इसका कथन करते हैं। अर्थात् उदीरणास्वामित्व का निर्देश करते हैं। पहले मूल प्रकृतियों सम्बन्धी उदीरकों को बतलाते हैं।

मूलप्रकृति सम्बन्धी उदीरणास्वामित्व

घाईणं छउमत्था उदीरगा रागिणो उ मोहस्स।
वेयाऊण पमत्ता सजोगिणो नामगोयाणं ॥४॥

शब्दार्थ—**घाईणं**—घाति प्रकृतियों के, **छउमत्था**—छद्मस्थ, **उदीरगा**—उदीरक, **रागिणो**—रागी, **उ**—और, **मोहस्स**—मोहनीयकर्म के, **वेयाऊण**—वेदनीय और आयु के, **पमत्ता**—प्रमत्तसंयत, **सजोगिणो**—सयोगि, **नामगोयाणं**—नाम और गोत्र कर्म के।

गाथार्थ—घातिकर्मों के छद्मस्थ, मोहनीय के रागी, वेदनीय और आयु के प्रमत्तगुणस्थान तक के और नाम, गोत्र के सयोगिकेवलीगुणस्थान तक के जीव उदीरक हैं।

विशेषार्थ—गाथा में मूल कर्म प्रकृतियों के उदीरणा-स्वामित्व का निर्देश किया है।

घाति कर्मप्रकृतियों के अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन प्रकृतियों के चरमावलिकाहीन क्षीणमोहगुणस्थान तक में वर्तमान समस्त छद्मस्थ जीव और इन से शेष रही घाति प्रकृति मोहनीय कर्म के चरमावलिकान्यून सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान तक के रागी जीव उदीरक हैं। वेदनीय एवं आयु कर्म के छठे प्रमत्तसंयतगुणस्थान तक के समस्त जीव उदीरक हैं। छठे गुणस्थान तक में भी आयु की जब अंतिम आवलिका शेष रहे तब उसमें उदीरणा नहीं होती है, उसके अतिरिक्त शेषकाल में होती है तथा नाम और गोत्र कर्म के सयोगिकेवलीगुणस्थान तक के समस्त जीव उदीरक हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से मूलकर्म प्रकृति सम्बन्धी उदीरणास्वामित्व जानना चाहिये। अब उत्तर प्रकृतियों के उदीरणास्वामित्व का निर्देश करते हैं।

उत्तर प्रकृतियों का उदीरणास्वामित्व

उवपरघायं साहारणं च इयरं तणुइ पज्जत्ता।
छउमत्था चउदंसणनाणावरणंतरायाणं ॥५॥

शब्दार्थ—उवपरघायं—उपघात, पराघात, **साहारणं**—साधारण, **च**—और, **इयरं**—इतर (प्रत्येक नाम), **तणुइ पज्जत्ता**—शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त, **छउमत्था**—छद्मस्थ जीव, **चउदंसण**—दर्शनावरणचतुष्क, **नाणावरणं-तरायाणं**—ज्ञानावरणपंचक और अंतरायपंचक।

गाथार्थ—उपघात, पराघात, साधारण और इतर—प्रत्येक नाम के उदीरक शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त जीव हैं। दर्शनावरण-चतुष्क, ज्ञानावरणपंचक, अंतरायपंचक इन चौदह प्रकृतियों के समस्त छद्मस्थ जीव उदीरक हैं।

विशेषार्थ—गाथा में नामकर्म की चार और घातिकर्मों की चौदह प्रकृतियों के उदीरणास्वामियों का निर्देश किया है। जिसका विस्तृत आशय इस प्रकार है—

उपघात, पराघात, साधारण और इतर—प्रत्येक इन चार प्रकृतियों की उदीरणा के स्वामी शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त समस्त जीव हैं। इतना विशेष है कि साधारणनामकर्म के उदीरक साधारणशरीरी जीव जानना चाहिये।[1]

---

१ साधारण, प्रत्येक और उपघात नामकर्म की उदीरणा यहाँ शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त के बताई है, परन्तु कर्मप्रकृति में प्रकृतिस्थानउदीरणा के अधिकार में और इसी ग्रन्थ के 'सप्ततिकासंग्रह' में नामकर्म के उदयाधिकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनावरणचतुष्क, ज्ञानावरणपंचक और अंतरायपंचक इन चौदह कर्मप्रकृतियों की उदीरणा के स्वामी चरमावलिका में वर्तमान क्षीण-मोहगुणस्थानस्थ जीवों को छोड़कर शेष समस्त छद्मस्थ जीव हैं। तथा—

तसथावराइतिगतिग आउ गईजातिदिट्ठिवेयाणं।
तन्नामाणूपुव्वीण किंतु ते अन्तरगईए ॥६॥

शब्दार्थ—तसथावराइतिगतिग—त्रसत्रिक, स्थावरत्रिक, **आउ**—आयु-चतुष्क, **गईजातिदिट्ठिवेयाणं**—गति, जाति, दृष्टि और वेद के, **तन्नामाणू-पुव्वीण**—उस-उस नाम वाले तथा आनुपूर्वी के, **किन्तु**—किन्तु, **ते**—वे, **अंतरगईए**—विग्रहगति में वर्तमान।

में साधारण, प्रत्येक और उपघात की उदीरणा शरीरस्थ को और पराघात की उदीरणा शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को कही है। शरीरस्थ यानि उत्पत्ति-स्थान में उत्पन्न हुआ और शरीरपर्याप्त यानि जिसने शरीरपर्याप्ति पूर्ण कर ली हो, यह शरीरस्थ और शरीरपर्याप्त इन दोनों में भेद है। जहाँ-जहाँ उदय या उदीरणा के स्थान बताये हैं, वहाँ यह भेद स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है। इसके सिवाय कर्मप्रकृति उदीरणा-अधिकार गाथा ६ के '**पत्तेगियस्स उ तणुत्था**' पद की चूर्णि इस प्रकार है—

"**पत्तेयसरीरणामाए साहारणसरीरणामाए य सव्वे सरीरोदए वट्टमाणा उदीरगा**" अर्थात् शरीरनामकर्म के उदय में वर्तमान प्रत्येक, साधारण की उदीरणा के स्वामी हैं। पराघात के लिये गाथा १२ में '**पराघायस्स उ देहेण पज्जत्ता**' पाठ है। '**देहेण पज्जत्ता**' यानि शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त। चूर्णि में भी इसी प्रकार है, यहाँ '**तणुत्था**' और '**देहेण पज्जत्ता**' का स्पष्ट भेद ज्ञात होता है। अतः शरीरस्थ अर्थात् उत्पत्तिस्थल में उत्पन्न हुआ अर्थ ठीक लगता है। फिर शरीरस्थ का शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त अर्थ कैसे किया, यह स्पष्ट नहीं होता है। विज्ञजन स्पष्ट करने की कृपा करें।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

गाथार्थ—त्रसत्रिक, स्थावरत्रिक, आयुचतुष्क, गति, जाति, दृष्टि, वेद और आनुपूर्वी इन समस्त प्रकृतियों की उदीरणा के स्वामी उस-उस नाम वाले जीव हैं। किन्तु आनुपूर्वी की उदीरणा के स्वामी विग्रहगति में वर्तमान जीव ही हैं।

विशेषार्थ—'तसथावराइतिगतिग' अर्थात् त्रसादित्रिक—त्रस, बादर और पर्याप्त तथा स्थावरादित्रिक—स्थावर, सूक्ष्म और अपर्याप्त, आयुचतुष्क, चार गति, पांच जाति, दृष्टि—मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय, नपुंसक आदि तीन वेद, इन सभी प्रकृतियों की उदीरणा के स्वामी उस-उस नाम वाले यानि उस-उस प्रकृति के उदय वाले जीव उदीरक हैं। जैसे कि—

त्रसनाम की उदीरणा के स्वामी त्रसनाम के उदय वाले त्रस जीव हैं, बादरनामकर्म के उदीरक बादरनाम के उदय वाले जीव हैं, सूक्ष्म-नाम की उदीरणा के स्वामी सूक्ष्मनाम के उदय वाले जीव हैं। इस प्रकार उपर्युक्त उस-उस प्रकृति के उदय वाले जीव उस-उस प्रकृति की उदीरणा के स्वामी हैं। चाहे फिर वे जीव विग्रहगति में स्थित हों या शरीरस्थ हों।

आनुपूर्वीनामकर्म की उदीरणा के स्वामी भी आनुपूर्वी के उदय वाले जीव हैं। जैसे कि नरकानुपूर्वी की उदीरणा का स्वामी नारक है। इसी प्रकार शेष आनुपूर्वियों के लिये भी समझना चाहिये। किन्तु इतना विशेष है कि मात्र विग्रहगति में वर्तमान जीव ही आनुपूर्वी के उदीरक हैं। क्योंकि विग्रहगति में ही आनुपूर्वी का उदय होता है। तथा—

> आहारी उत्तरतणु नरतिरितव्वेयए पमोत्तूणं।
> उद्दीरंती उरलं ते चेव तसा उवंगं से ॥७॥

शब्दार्थ—**आहारी**—आहारकशरीरी, **उत्तरतणु**—उत्तर शरीरी—वैक्रिय-शरीरी, **नरतिरितव्वेयए**—उसके वेदक मनुष्य और तिर्यंच, **पमोत्तूणं**—छोड़कर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्दीरंती—उदीरणा करते हैं, **उरलं**—औदारिक शरीर की, **ते चेव**—वही, **तसा**—त्रस, **उवंगं**—अंगोपांग की, **से**—उसके।

गाथार्थ—आहारक शरीरी तथा वैक्रिय शरीरी देव, नारक तथा उनके वेदक मनुष्य एवं तिर्यंचों को छोड़कर शेष समस्त जीव औदारिक शरीर की उदीरणा करते हैं। वे ही सब परन्तु त्रस जीव उसके अंगोपांगनाम की उदीरणा के स्वामी हैं।

विशेषार्थ—आहारक शरीर की जिन्होंने विकुर्वणा की है ऐसे आहारक शरीरी, वैक्रिय शरीरी देव तथा नारक तथा वैक्रिय शरीर की जिन्होंने विकुर्वणा की है, ऐसे वैक्रिय शरीरी मनुष्य[1] और तिर्यंचों को छोड़कर शेष समस्त एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव औदारिक शरीरनामकर्म, औदारिकबन्धनचतुष्टय एवं औदारिकसंघात इन छह प्रकृतियों की उदीरणा करते हैं तथा जो जीव औदारिक शरीरनाम की उदीरणा के स्वामी हैं, वे ही सब औदारिक-अंगोपांगनाम की उदीरणा के भी स्वामी हैं। परन्तु यहाँ त्रस जीवों—द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों—को ही उदीरक जानना चाहिये। क्योंकि स्थावरों में अंगोपांगनामकर्म का उदय नहीं होता है। तथा—

आहारी सुरनारग सण्णी इयरेऽनिलो उ पज्जत्तो।
लद्धीए बायरो दीरगो उ वेउव्वियतणुस्स ॥८॥
तदुवंगस्सवि तेच्चिय पवणं मोत्तूण केई नर तिरिया।
आहारसत्तगस्स वि कुणइ पमत्तो विउव्वन्तो ॥९॥

---

१ वैक्रिय और आहारक शरीर की विकुर्वणा करने वाले मनुष्य-तिर्यंच को जब तक वह वैक्रिय और आहारक शरीर रहता है तब तक वैक्रिय और आहारक शरीर की उदय-उदीरणा होती है, औदारिक शरीर की उदय-उदीरणा नहीं होती। यद्यपि उस समय औदारिक शरीर है, परन्तु वह निश्चेष्ट है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—आहारी—आहारपर्याप्ति से पर्याप्त, **सुरनारग**—देव और नारक, **सण्णी**—संज्ञी, **इयरे**—इतर—मनुष्य, तिर्यंच, **अनिलो**—वायुकाय, **उ**—और, **पज्जत्तो**—पर्याप्त, **लद्धीए**—लब्धियुक्त, **बायरो**—बादर, **दीरगो**—उदीरक, **उ**—और, **वेउव्वियतणुस्स**—वैक्रिय शरीरनाम के।

तदुवंगस्सवि—उसी के अंगोपांगनाम के (वैक्रिय अंगोपांग के), **तेच्चिय**—वही, **पवणं**—वायुकाय को, **मोत्तूण**—छोड़कर, **केइ**—कोई, **नर तिरिया**—मनुष्य, तिर्यंच, **आहारसत्तगस्स**—आहारकसप्तक की, **वि**—भी, **कुणइ**—करता है, **पमत्तो**—प्रमत्तसंयत, **विउव्वन्तो**—विकुर्वणा करता हुआ।

गाथार्थ—आहारपर्याप्ति से पर्याप्त देव और नारक, वैक्रिय-लब्धि युक्त संज्ञी मनुष्य, तिर्यंच और बादर पर्याप्त वायुकाय के जीव वैक्रिय शरीरनाम के उदीरक हैं।

वायुकाय को छोड़कर वैक्रिय-अंगोपांग के भी वही जीव उदीरक हैं। मात्र कोई मनुष्य, तिर्यंच उदीरक हैं। विकुर्वणा करता हुआ प्रमत्तसंयत आहारकसप्तक का उदीरक है।

विशेषार्थ—आहारपर्याप्ति से पर्याप्त देव और नारक तथा जिनको वैक्रिय शरीर करने की शक्ति—लब्धि उत्पन्न हुई है और उसकी विकुर्वणा कर रहे हैं ऐसे संज्ञी मनुष्य और तिर्यंच एवं वैक्रिय लब्धि-सम्पन्न दुर्भगनाम के उदय वाले बादर पर्याप्त वायुकाय के जीव वैक्रियशरीरनाम की तथा उपलक्षण से वैक्रियबन्धनचतुष्टय, वैक्रिय-संघातननाम को उदीरणा के स्वामी हैं। तथा—

वैक्रिय-अंगोपांगनाम की उदीरणा के स्वामी भी (वायुकाय के जीवों के अंगोपांग नहीं होने से, उनको छोड़कर शेष) उपर्युक्त वही देवादि जीव जो वैक्रिय शरीरनाम के उदीरक हैं, वे सभी हैं। मात्र मनुष्य, तिर्यंचों में कतिपय ही वैक्रिय शरीर एवं वैक्रिय-अंगोपांगनाम के उदीरक हैं। क्योंकि कुछ एक तिर्यंच और मनुष्य ही वैक्रिय लब्धि-युक्त होते हैं। जिनको उसकी लब्धि होती है, वे ही उसकी विकुर्वणा कर सकते हैं तथा आहारकसप्तक की विकुर्वणा करते हुए लब्धियुक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौदह पूर्वधर प्रमत्तसंयतगुणस्थानवर्ती जीव उसकी उदीरणा करते हैं। अर्थात् उसकी उदीरणा के स्वामी हैं।[1] तथा—

तेत्तीसं नामधुवोदयाण उद्दीरगा सजोगीओ।
लोभस्स उ तणुकिट्टीण होंति तणुरागिणो जीवा ॥१०॥

शब्दार्थ—तेत्तीसं—तेतीस, **नामधुवोदयाण**—नाम की ध्रुवोदया प्रकृतियों के, **उद्दीरगा**—उदीरक, **सजोगीओ**—सयोगिकेवली तक के, **लोभस्स**—लोभ की, **उ**—और, **तणुकिट्टीण**—सूक्ष्म किट्टियों के, **होंति**—होते हैं, **तणुरागिणो**—तनुरागि—सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानवर्ती, **जीवा**—जीव।

गाथार्थ—नामकर्म की ध्रुवोदया तेतीस प्रकृतियों के उदीरक सयोगिकेवलीगुणस्थान तक के तथा लोभ की सूक्ष्म किट्टियों के तनुरागि—सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानवर्ती जीव उदीरक हैं।

विशेषार्थ—तैजससप्तक, वर्णादिबीस, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और अगुरुलघु रूप नामकर्म की तेतीस ध्रुवोदया प्रकृतियों की उदीरणा के स्वामी सयोगिकेवलीगुणस्थान तक में वर्तमान समस्त जीव हैं।

चरमावलिका छोड़कर सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानवर्ती जीव लोभ सम्बन्धी सूक्ष्म किट्टियों की उदीरणा के स्वामी हैं। चरमावलिका यह क्षपकश्रेणि में उदयावलिका है और वह सकल करण के अयोग्य है तथा उसके ऊपर दलिक नहीं हैं एवं उपशमश्रेणि में अन्तरकरण से ऊपर की दूसरी स्थिति में दलिक होते हैं, परन्तु उनकी उदीरणा भी

१ आहारक शरीर की विकुर्वणा करके उस शरीर योग्य समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर अप्रमत्तगुणस्थान में जाता है और वहाँ उसको अट्ठाईस, उनतीस प्रकृतिक ये दो नामकर्म के उदयस्थान होते हैं। जिससे आहारकद्विक की उदीरणा अप्रमत्तसंयत भी करता है, लेकिन अल्प होने से उसकी विवक्षा न की हो, ऐसा प्रतीत होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस समय नहीं होती है, इसलिये उसका निषेध किया है। बादर लोभ की उदीरणा तो नौवें अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थान तक होती है, अतः बादर लोभ की उदीरणा के स्वामी नौवें गुणस्थान तक के जीव हैं। केवल किट्टीकृत लोभ की दसवें गुणस्थान में वर्तमान जीव ही उदीरणा करते हैं। क्योंकि उसका उदय दसवें गुणस्थान में ही होता है। तथा—

पंचिंदिय पज्जत्ता नरतिरिय चउरंसउसभपुव्वाणं ।
चउरंसमेव देवा उत्तरतणुभोगभूमा य ॥११॥

शब्दार्थ—**पंचिंदियपज्जत्ता**—पंचेन्द्रिय पर्याप्त, **नरतिरिय**—मनुष्य, तिर्यंच, **चउरंसउसभपुव्वाणं**—समचतुरस्र आदि संस्थानों और वज्रऋषभनाराच आदि संहननों की, **चउरंसमेव**—समचतुरस्रसंस्थान के ही, **देवा**—देव, **उत्तरतणुभोगभूमा**—उत्तर शरीर वाले और भोगभूमिज, **य**—और।

गाथार्थ—समचतुरस्र आदि संस्थानों और वज्रऋषभनाराच आदि संहननों की उदीरणा पंचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य और तिर्यंच करते हैं। देव, उत्तरशरीर वाले और भोगभूमिज समचतुरस्र-संस्थान के ही उदीरक हैं।

विशेषार्थ—शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों के समचतुरस्र आदि छह संस्थानों और वज्रऋषभनाराच आदि छह संहननों की उदीरणा होती है। अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच संस्थानों एवं संहननों की उदीरणा के स्वामी हैं। लेकिन उदयप्राप्त कर्म की उदीरणा होती है, ऐसा सिद्धान्त होने से जब जिस संहनन और जिस संस्थान का उदय हो तभी उसकी उदीरणा होती है, अन्य की नहीं, यह समझना चाहिये।[1] तथा—

---

१ यद्यपि यहाँ शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को संहनन और संस्थान का उदीरक कहा है। परन्तु तनुस्थ उत्पत्तिस्थान में उत्पन्न हुए के शरीरनामकर्म के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्त देव, उत्तरशरीर वाले—आहारकशरीरी एवं वैक्रियशरीरी तथा भोगभूमि में उत्पन्न हुए समस्त युगलिक[1] मात्र समचतुरस्र-संस्थान की ही उदीरणा करते हैं। अन्य संस्थानों के उदय का अभाव होने से वे उन अन्य संस्थानों की उदीरणा भी नहीं करते हैं। तथा—

आइमसंघयणं च्चिय सेढीमारूढगा उदीरेंति।
इयरे हुण्डं छेवट्ठगं तु विगला अपज्जत्ता ॥१२॥

शब्दार्थ—आइमसंघयणं—प्रथम संहनन की, **च्चिय**—ही, **सेढीमारूढगा**—श्रेणि पर आरूढ़ हुए, **उदीरेंति**—उदीरणा करते हैं, **इयरे**—इतर, **हुण्डं**—हुण्डक की, **छेवट्ठगं**—सेवार्त की, **तु**—और, **विगला**—विकलेन्द्रिय, **अपज्जत्ता**—अपर्याप्त।

गाथार्थ—श्रेणि पर आरूढ़ हुए प्रथम संहनन की ही उदीरणा करते हैं। इतर हुण्डक की तथा विकलेन्द्रिय एवं अपर्याप्त सेवार्तसंहनन की उदीरणा करते हैं।

विशेषार्थ—श्रेणि पर आरूढ़ अर्थात् उपशमश्रेणि पर तो आदि के तीन संहननों द्वारा आरूढ़ हुआ जा सकता है तथा उदय का अभाव होने से अन्य किसी भी संहनन वाले जीव क्षपकश्रेणि पर आरूढ़ नहीं हो सकते हैं। अतएव क्षपकश्रेणि पर आरूढ़ हुए जीव ही प्रथम संहनन—वज्रऋषभनाराचसंहनन की उदीरणा करते हैं। तथा—

'इयरे'—ऊपर जिन जीवों को जिस संस्थान का उदीरक कहा है, उनसे अन्य ऐसे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, नारक एवं लब्धि-अपर्याप्त

उदय के साथ उनका उदय होता है और उदय के साथ उदीरणा भी होती है ऐसा नियम होने से संहनन और संस्थान का उदीरक भी तनुस्थ—शरीर में वर्तमान जीव होना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

१ संहननों में भी प्रथम संहनन की उदीरणा युगलिक करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य हुण्डकसंस्थान की उदीरणा करते हैं। क्योंकि उन सबको हुण्डकसंस्थान का ही उदय होता है, अन्य कोई संस्थान उदय में होता ही नहीं है तथा विकलेन्द्रियों एवं लब्धि-अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य के एक सेवार्तसंहनन की ही उदीरणा होती हैं। शेष संहननों का उनके उदय नहीं होने से वे उनकी उदीरणा नहीं करते हैं। तथा—

वेउव्वियआहारगउदए न नरावि होंति संघयणी।
पज्जत्तबायरे च्चिय आयवउद्दीरगो भोमो ॥१३॥

शब्दार्थ—वेउव्वियआहारगउदए—वैक्रिय और आहारक शरीर का उदय होने पर, **न**—नहीं, **नरावि**—मनुष्य भी, **होंति**—होते हैं, **संघयणी**—संहनन वाले, **पज्जत्तबायरे**—पर्याप्त बादर, **च्चिय**—ही, **आयवउद्दीरगो**—आतपनाम के उदीरक, **भोमो**—पृथ्वीकाय।

गाथार्थ—वैक्रिय और आहारक शरीर का उदय होने पर मनुष्य भी संहनन वाले नहीं होते हैं। पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय जीव ही आतपनाम के उदीरक हैं।

विशेषार्थ—उत्तर वैक्रिय और आहारक शरीर नामकर्म के उदय में वर्तमान मनुष्य तथा 'अपि' शब्द से उत्तर वैक्रियशरीरी तिर्यंच भी किसी संहनन की उदीरणा नहीं करते हैं। क्योंकि संहनननाम औदारिक शरीर में ही होता है, अन्य शरीरों में हड्डियां नहीं होने से संहनन नहीं होता है तथा सूर्य के विमान के नीचे रहने वाले खर पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय जीव ही आतपनाम की उदीरणा के स्वामी हैं। क्योंकि इनके सिवाय अन्य किसी भी जीव के आतपनामकर्म का उदय होता ही नहीं है। तथा—

पुढवीआउवणस्सइ बायर पज्जत्त उत्तरतणू य।
विगलपणिंदियतिरिया उज्जोवुद्दीरगा भणिया ॥१४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—पुढवीआउवणस्सइ—पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय, **बायरपज्जत्त**—बादर पर्याप्त, **उत्तरतणू**—उत्तर वैक्रिय और आहारक शरीरी, **य**—और, **विगलपणिंदियतिरिया**—विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तिर्यंच, **उज्जोवुद्दीरगा**—उद्योतनाम के उदीरक, **भणिया**—कहे गये हैं।

गाथार्थ—बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय तथा उत्तर वैक्रिय एवं आहारक शरीरी, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तिर्यंच उद्योतनामकर्म के उदीरक कहे गये हैं।

विशेषार्थ—बादर लब्धिपर्याप्त पृथ्वीकाय, अप्काय और (प्रत्येक या साधारण) वनस्पतिकाय तथा उत्तर वैक्रियशरीरी, आहारकशरीरी तथा पर्याप्त विकलेन्द्रिय एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय ये सभी जीव उद्योतनाम की उदीरणा के स्वामी हैं। क्योंकि इन सभी जीवों के उद्योत नाम का उदय संभव है। जब और जिनको उद्योतनाम का उदय हो तब और उनको उद्योतनाम की उदीरणा भी होती है। तथा—

सगला सुगतिसराणं पज्जत्तासंखवास देवा य।
इयराणं नेरइया नरतिरि सुसरस्स विगला य ॥१५॥

शब्दार्थ—सगला—समस्त इन्द्रियों वाले—पंचेन्द्रिय, **सुगति**—शुभ विहायोगति, **सराणं**—सुस्वर के, **पज्जत्तासंखवास**—पर्याप्त असंख्यात वर्षायुष्क, **देवा**—देव, **य**—और, **इयराणं**—इतर के—अशुभ विहायोगति और दुःस्वर के, **नेरइया**—नैरयिक, **नरतिरि**—मनुष्य, तिर्यंच, **सुसरस्स**—सुस्वर के, **विगला**—विकलेन्द्रिय, **य**—और दुःस्वर के।

गाथार्थ—पर्याप्त पंचेन्द्रिय, असंख्यवर्षायुष्क युगलिक और देव शुभ विहायोगति एवं सुस्वर के तथा नैरयिक और कितनेक मनुष्य, तिर्यंच अशुभ विहायोगति और दुःस्वर के उदीरक हैं। विकलेन्द्रिय सुस्वर और दुःस्वर के उदीरक हैं।

विशेषार्थ कितने ही पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य तथा सभी असंख्यवर्षायुष्क युगलिक, सभी देव प्रशस्त विहायोगति और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुस्वर नाम की उदीरणा के स्वामी हैं तथा नारक एवं जिनको उनका उदय हो ऐसे पर्याप्त मनुष्य, तिर्यंच अप्रशस्त विहायोगति एवं दुःस्वर की उदीरणा के स्वामी हैं[1] तथा पर्याप्त विकलेन्द्रियों में से कितनेक सुस्वर की और कितने ही दुःस्वर की उदीरणा के स्वामी हैं। लब्धि-अपर्याप्त विकलेन्द्रियादि के विहायोगति और स्वर का उदय नहीं होता है। तथा—

ऊसासस्स सरस्स य पज्जत्ता आणुपाणभासासु।
जा ण निरुम्भइ ते ताव होंति उद्दीरगा जोगी ॥१६॥

शब्दार्थ—**ऊसासस्स**—श्वासोच्छ्‌वास के, **सरस्स**—स्वर के, **य**—और **पज्जत्ता**—पर्याप्ति, **आणुपाणभासासु**—आनप्राण और भाषा पर्याप्ति से, **जा**—जब तक, **ण**—नहीं, **निरुम्भइ**—निरोध करते हैं, **ते**—उनके, **ताव**—तब तक, **होंति**—होते हैं, **उद्दीरगा**—उदीरक, **जोगी**—सयोगिकेवली।

गाथार्थ—आनप्राण और भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त अनुक्रम से श्वासोच्छ्‌वास और स्वर के उदीरक हैं तथा जब तक उन दोनों का निरोध नहीं होता है, तब तक उन दोनों के सयोगिकेवली उदीरक हैं।

विशेषार्थ—उच्छ्‌वास और स्वर के साथ आनप्राण एवं भाषा शब्द का अनुक्रम से योग करके यह तात्पर्य समझना चाहिये कि श्वासोच्छ्‌वासपर्याप्ति से पर्याप्त समस्त जीव उच्छ्‌वासनामकर्म की उदीरणा के स्वामी हैं तथा भाषापर्याप्ति से पर्याप्त सभी जीव स्वर—

---

१ लब्धि-अपर्याप्त मनुष्य तिर्यंचों के उक्त प्रकृतियों का उदय ही नहीं होता है। क्योंकि उनको आदि के २१ और २६ प्रकृतिक ये दो ही उदयस्थान होते हैं। पर्याप्तनाम के उदय वाले मनुष्य तिर्यंचों में किसी को शुभ विहायोगति और सुस्वर का और किसी को अशुभ विहायोगति व दुःस्वर का उदय होता है और जिसको जिसका उदय होता है, वह उसकी उदीरणा करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुस्वर अथवा दुःस्वर इन दोनों में से जिसका उदय हो, उसके उदीरक हैं। क्योंकि परस्पर विरोधी प्रकृति होने से दोनों का एक साथ उदय नहीं होता है। यद्यपि पूर्व में सामान्य से स्वरनाम के उदीरक पर्याप्त बताये जा चुके हैं, लेकिन भाषापर्याप्ति से पर्याप्त ही स्वर के उदीरक होते हैं, यह विशेष बताने के लिए यहाँ पुनः निर्देश किया है। तथा—

जब तक उच्छ्वास और भाषा का रोध नहीं होता है, तब तक ही सयोगिकेवली भगवान उच्छ्वास एवं स्वर नाम की उदीरणा के स्वामी होते हैं, तत्पश्चात् उदय नहीं होने से उदीरणा नहीं होती है। तथा—

नेरइया सुहुमतसा वज्जिय सुहुमा य तह अपज्जत्ता।
जसकित्तुदीरगाइज्जसुभगनामाण सण्णिसुरा ॥१७॥

शब्दार्थ—**नेरइया**—नारक, **सुहुमतसा**—सूक्ष्म त्रस, **वज्जिय**—छोड़कर, **सुहुमा**—सूक्ष्म, **य**—और, **तह**—तथा, **अपज्जत्ता**—अपर्याप्त, **जसकित्तुदीरगाइज्ज**—यशःकीर्ति के उदीरक, आदेय नाम, **सुभगनामाण**—सुभग नाम के, **सण्णिसुरा**—संज्ञी और देव।

गाथार्थ—नारक, सूक्ष्मत्रस, सूक्ष्म तथा अपर्याप्तकों को छोड़कर शेष जीव यशःकीर्ति के उदीरक होते हैं। आदेय और सुभग नाम के उदीरक संज्ञी और देव होते हैं।

विशेषार्थ—नारक, सूक्ष्मत्रस—तेजस्काय और वायुकाय के जीव, सूक्ष्मनामकर्म के उदय वाले सभी जीव तथा लब्धि-अपर्याप्त एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय इन सबको छोड़कर शेष समस्त जीव यशःकीर्ति के उदीरक हैं। इनमें भी जिनको यशःकीर्ति का उदय सम्भव है और उनको जब यशःकीर्ति का उदय हो तभी उसकी उदीरणा करते हैं।

कितने ही संज्ञी मनुष्य और तिर्यंच तथा कितनेक देव जिनको उनका उदय हो, वे सुभग एवं आदेय नाम के उदीरक हैं। तथा—

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

उच्चं चिय जइ अमरा केई मणुया व नीयमेवण्णे ।
चउगइया दुभगाई तित्थयरो केवली तित्थं ॥१८॥

शब्दार्थ—**उच्चं**—उच्चगोत्र की, **चिय**—ही, **जइ**—यति, **अमरा**—देव, **केई**—कोई-कोई, **मणुया**—मनुष्य, **व**—अथवा, **नीयमेवण्णे**—अन्य दूसरे नीच गोत्र की, **चउगइया**—चारों गति के, **दुभगाई**—दुर्भगादि की, **तित्थयरो केवली**—तीर्थंकर केवली, **तित्थं**—तीर्थंकरनाम की ।

गाथार्थ—यति और देव उच्चगोत्र की ही उदीरणा करते हैं। कोई-कोई मनुष्य भी उच्चगोत्र के उदीरक हैं और अन्य जीव नीचगोत्र के ही उदीरक हैं। दुर्भग आदि की चारों गति के जीव उदीरणा करते हैं। तीर्थंकर केवली तीर्थंकरनाम के उदीरक हैं।

विशेषार्थ—सम्यक् संयमानुष्ठान में प्रयत्नवन्त समस्त मुनिराज और समस्त भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देव उच्चगोत्र की ही उदीरणा करते हैं तथा जिनका उच्चकुल में जन्म हुआ है ऐसे कोई-कोई मनुष्य भी उच्चगोत्र के उदीरक हैं। उनको नीचगोत्र का उदय नहीं होने से वे नीचगोत्र की उदीरणा नहीं करते हैं तथा उक्त से व्यतिरिक्त नारक, तिर्यंच और नीच कुलोत्पन्न मनुष्य नीचगोत्र की ही उदीरणा करते हैं। तथा—

'दुभगाई' अर्थात् दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति नामकर्म की इन तीन प्रकृतियों की चारों गति के जीव उदीरणा करते हैं। मात्र जिनको सुभग आदि का उदय हो वे उनकी उदीरणा करते हैं तथा शेष सभी जीव दुर्भग आदि के उदय में रहते दुर्भग आदि की उदीरणा करते हैं। तथा—

जिन्होंने तीर्थंकरनाम का बंध किया है उनको जब केवलज्ञान उत्पन्न हो तब वे तीर्थंकरनाम की उदीरणा करते हैं। क्योंकि उसके सिवाय शेष काल में तीर्थंकरनाम का उदय नहीं होता है। तथा—

मोत्तूण खीणरागं इंदियपज्जत्तगा उदीरंति ।
निद्दापयला सायासायाई जे पमत्तत्ति ॥१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—मोत्तूण—छोड़कर, **खीणरागं**—क्षीणराग को, **इंदियपज्जत्तगा**—इन्द्रियपर्याप्ति से पर्याप्त, **उदीरंति**—उदीरणा करते हैं, **निद्दापयला**—निद्रा और प्रचला की, **सायासायाई**—साता असाता वेदनीय की, **जे**—जो, **पमत्तत्ति**—प्रमत्तगुणस्थान तक के।

गाथार्थ—क्षीणराग को छोड़कर इन्द्रियपर्याप्ति से पर्याप्त सभी निद्रा और प्रचला की उदीरणा करते हैं। साता-असाता वेदनीय के प्रमत्तगुणस्थान तक के जीव उदीरक हैं।

विशेषार्थ—'खीणरागं' अर्थात् क्षीणमोह नामक बारहवां गुणस्थान, अतः उस गुणस्थान की चरम आवलिका शेष न रहे, तब तक इन्द्रियपर्याप्ति से पर्याप्त सभी जीव जब उनका उदय हो तब निद्रा और प्रचला की उदीरणा करते हैं। इस सम्बन्ध में मतान्तर निम्न प्रकार हैं—

१ कर्मस्तव नामक प्राचीन दूसरे कर्मग्रन्थ के कर्ता आदि कितनेक आचार्य क्षपकश्रेणि में और क्षीणमोहगुणस्थान में भी निद्राद्विक का उदय मानते हैं। अतः जब उदय हो तब अवश्य उसकी उदीरणा होती है, इस सिद्धान्त के अनुसार उनके मतानुसार इन्द्रियपर्याप्ति से पर्याप्त होने के काल से लेकर क्षीणमोहगुणस्थान की चरमावलिका शेष न रहे, तब तक निद्राद्विक की उदीरणा होती है। अर्थात् चरमावलिका से पूर्व तक निद्राद्विक की उदीरणा होती है।

२ सत्कर्म नामक ग्रन्थ के कर्ता आदि कितने ही आचार्य 'निद्दादुगस्स उदओ खीणखवगे परिच्चज्ज' क्षपकश्रेणि और क्षीणमोहगुणस्थान में वर्तमान जीवों को छोड़कर निद्राद्विक का उदय मानते हैं। अतः उनके मतानुसार क्षपकश्रेणि में वर्तमान जीवों को छोड़कर शेष उपशांतमोहगुणस्थान तक में वर्तमान समस्त जीवों के निद्राद्विक का उदय और उदीरणा होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ कर्मप्रकृति उदीरणाकरण गाथा १८ में कहा है—जिस समय इन्द्रियपर्याप्ति से पर्याप्त होता है, उसके बाद के समय से लेकर क्षपकश्रेणि और क्षीणमोहगुणस्थान में वर्तमान जीवों को छोड़कर (उपशांतमोहगुणस्थान पर्यन्त) शेष सभी जीव निद्रा और प्रचला की उदीरणा के स्वामी हैं।[1] तथा—

मिथ्यादृष्टि से लेकर छठे प्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त वर्तमान समस्त जीव साता-असाता वेदनीय की उदीरणा करते हैं। अन्य अप्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानवर्ती अति विशुद्ध परिणाम वाले होने से तद्योग्य अध्यवसायों के अभाव में दोनों वेदनीयकर्म में से किसी की उदीरणा नहीं करते हैं। मात्र उनके साता-असाता में से एक का उदय ही होता है। तथा—

अपमत्ताईउत्तरतणू य अस्संखयाउ वज्जेत्ता।
सेसानिद्दाणं सामी सबंधगंता कसायाणं ॥२०॥

शब्दार्थ—**अपमत्ताई**—अप्रमत्तादि, **उत्तरतणू**—उत्तर शरीर वालों, **य**—और, **अस्संखयाउ**—असंख्यात वर्षायुष्कों को, **वज्जेत्ता**—छोड़कर, **सेसानिद्दाणं**—शेष निद्राओं के, **सामी**—स्वामी, **सबंधगंता**—अपने बंधविच्छेद तक, **कसायाणं**—कषायों के।

गाथार्थ—अप्रमत्तादि उत्तर शरीर वालों और असंख्यात वर्षायुष्कों को छोड़कर शेष जीव शेष निद्राओं की उदीरणा के स्वामी हैं। जिस कषाय का गुणस्थानों में जहाँ-जहाँ बन्धविच्छेद होता है, वहाँ तक में वर्तमान जीव उस-उस कषाय की उदीरणा के स्वामी हैं।

---

१ इंदियपज्जत्तीए दुसमयपज्जत्तगाए पाउग्गा।
निद्दापयलाणं खीणरागखवगे परिच्चज्ज ॥
—कर्मप्रकृति, उदीरणाकरण अधिकार, गाथा १८

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

विशेषार्थ— अप्रमत्तासंयत आदि गुणस्थान वालों, 'उत्तारतणू' अर्थात् वैक्रियशरीरी[1] और आहारकशरीरी तथा असंख्यात वर्षायुष्क युगलिकों को छोड़कर शेष सभी जीव शेष निद्राओं— निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि की उदीरणा के स्वामी हैं। तथा—

जिस कषाय का जिस गुणस्थान में बन्धविच्छेद होता है, उस गुणस्थान पर्यन्त वर्तमान जीव उस-उस कषाय के उदीरक हैं, अन्य नहीं। जैसे कि अनन्तानुबन्धिकषाय के सासादनगुणस्थान तक में वर्तमान, अप्रत्याख्यानावरणकषाय के अविरतसम्यग्दृष्टि तक में वर्तमान, प्रत्याख्यानावरणकषाय के देशविरत गुणस्थान तक में वर्तमान तथा लोभ वर्जित संज्वलनकषाय के नौवें अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थान में जहाँ तक बन्ध होता है, वहाँ तक वर्तमान एवं संज्वलन लोभ के अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थान पर्यन्त वर्तमान जीव उदीरक हैं और सूक्ष्म लोभकिट्टियों की उदीरणा दसवें गुणस्थान में वर्तमान आत्माएँ करती हैं। तथा—

हासरईसायाणं अंतमुहुत्तं तु आइमं देवा।
इयराणं नेरइया उड्ढं परियत्तणविहीए ॥२१॥

शब्दार्थ – **हासरईसायाणं**— हास्य, रति और सातावेदनीय के, **अंतमुहुत्तं**— अन्तर्मुहूर्त, **तु**—और, **आइमं**— पहले, **देवा**— देव, **इयराणं**— इतरों के, **नेरइया**—नारक, **उड्ढं**— इसके बाद, **परियत्तणविहीए**— परावर्तन के क्रम से।

गाथार्थ—पहले अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त देव हास्य, रति और सातावेदनीय के और नारक इतरों—अरति, शोक एवं असाता के उदीरक होते हैं। इसके बाद परावर्तन के क्रम से उदीरक होते हैं।

विशेषार्थ—उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सभी देव हास्य, रति और सातावेदनीय के ही अवश्य उदीरक होते

---

१ यहाँ वैक्रिय शरीरी पद से देव, नारक तथा वैक्रिय शरीर की जिन्होंने विकुर्वणा की है ऐसे मनुष्य, तिर्यंचों का ग्रहण करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। क्योंकि प्रारम्भ के अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सभी देवों के हास्य, रति और साता का ही उदय होता है तथा नारक उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अवश्य शोक, अरति एवं असातावेदनीय के ही उदीरक होते हैं। इसका कारण यह है कि नारकों के उस समय शोक, अरति तथा असातावेदनीय का ही उदय होता है।

आद्य अन्तर्मुहूर्त बीतने के बाद देव और नारक परावर्तन के क्रम से छहों प्रकृतियों में से यथायोग्य जिनका उदय होता है उनके उदीरक होते हैं। ये छह प्रकृतियां परावर्तमान हैं और परावर्तमान होने से सर्वदा अमुक प्रकृतियों का ही उदय नहीं हो सकता है। नारकों का अधिक काल असाता के उदय में ही व्यतीत होता है और साता का उदय तीर्थंकर के जन्मकल्याणक आदि प्रसंगों पर तथा देवों का अधिक काल साता के उदय में जाता है और असाता का उदय तो मात्सर्यादि दोषों की उत्पत्ति, प्रियवियोग एवं च्यवनादि प्रसंगों पर संभव है।

कितने ही नारक जो कि तीव्र पाप के योग से नरकों में उत्पन्न हुए हैं, उनको अपनी भवस्थिति पर्यन्त असातावेदनीय का ही उदय संभव होने से वे उसी के—आसातावेदनीय के ही उदीरक होते हैं। तथा—

हासाईछक्कस्स उ जाव अपुव्वो उदीरगा सव्वे।
उदओ उदीरणा इव ओघेणं होइ नायव्वो ॥२२॥

शब्दार्थ—हासाईछक्कस्स—हास्यादिषट्क के, **उ**—ही, **जाव**—पर्यन्त के, **अपुव्वो**—अपूर्वकरण, **उदीरगा**—उदीरक, **सव्वे**—सभी, **उदओ**—उदय, **उदीरणा इव**—उदीरणा के समान, **ओघेणं**—सामान्य से, **होइ**—हैं, **नायव्वो**—जानने योग्य।

गाथार्थ—अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त के सभी जीव हास्यादिषट्क के उदीरक होते हैं। सामान्य से उदीरणा के समान ही उदय जानने योग्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा रूप हास्यषट्क के उदीरक अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त वर्तमान सभी जीव जानना चाहिये।

जिस प्रकार से विस्तारपूर्वक प्रकृति-उदीरणा का स्वरूप कहा है उसी प्रकार सामान्यतः उदय का स्वरूप भी समझना चाहिये। इसका कारण यह है कि उदय और उदीरणा प्रायः साथ ही प्रवर्तित होती है। किन्तु इतना विशेष है कि इकतालीस प्रकृतियों[1] में ही उदीरणा से उदय अधिककाल पर्यन्त होता है। इसी बात को यहाँ प्रायः शब्द से स्पष्ट किया है। क्योंकि उनसे शेष रही प्रकृतियों में तो उदय और उदीरणा युगपद्भावी है। तथा—

पगइट्ठाणविगप्पा जे सामी होंति उदयमासज्ज।
तेच्चिय उदीरणाए नायव्वा घातिकम्माणं ॥२३॥

शब्दार्थ—**पगइट्ठाणविगप्पा**—प्रकृतिस्थान और विकल्प, **जे**—जो, **सामी**—स्वामी, **होंति**—हैं, **उदयमासज्ज**—उदयाश्रित, **तेच्चिय**—वे ही, **उदीरणाए**—उदीरणा में, **नायव्वा**—जानना चाहिये, **घातिकम्माणं**—घाति कर्मों के।

गाथार्थ—घातिकर्मों के उदयाश्रित जो प्रकृतिस्थान और उनके विकल्प तथा स्वामी कहे हैं, वे ही उदीरणा में भी जानना चाहिये।

विशेषार्थ—'घातिकम्माणं' अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय रूप घातिकर्मों के उदय की अपेक्षा जो-जो प्रकृतिस्थान पूर्व में कहे गये हैं और उन-उन प्रकृतिस्थानों के जो-जो भेद बताये हैं एवं उन-उन भेदों के मिथ्यादृष्टि आदि जो स्वामी कहे हैं वे सभी अन्यूनानतिरिक्त उदीरणा के विषय में भी समझना चाहिये।

---

१ इकतालीस प्रकृतियों के नाम एवं उनका कितने काल उदय अधिक होता है यह पांचवे अधिकार की उदय विधि के प्रसंग में गाथा ९८-१०० द्वारा स्पष्ट किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि इकतालीस प्रकृतियों के सिवाय शेष प्रकृतियों का जहाँ तक उदय होता है—तब तक उदीरणा भी होती है, ऐसा शास्त्रीय सिद्धान्त है।

एक साथ जितनी प्रकृतियों का उदय हो, वह प्रकृतिस्थान कहलाता है। जैसे कि मिथ्यादृष्टि को मोहनीयकर्म की एक साथ सात, आठ, नौ या दस प्रकृतियां उदय में होती हैं। उनमें से आठप्रकृतिक स्थान का उदय अनेक प्रकार से होता है, इसी प्रकार नौप्रकृतिक का भी अनेक रीति से होता है। इसी तरह उदीरणा में भी प्रकृतिस्थान, उनके विकल्प आदि के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। तथा—

मोत्तुं अजोगिठाणं सेसा नामस्स उदयवण्णेया।
गोयस्स य सेसाणं उदीरणा जा पमत्तोत्ति ॥२४॥

शब्दार्थ—मोत्तुं—छोड़कर, **अजोगिठाणं**—अयोगि के प्रकृतिस्थान को, **सेसा**—शेष, **नामस्स**—नामकर्म के, **उदयवण्णेया**—उदय के समान जानना चाहिए, **गोयस्स**—गोत्रकर्म के, **य**—और, **सेसाणं**—शेष की, **उदीरणा**—उदीरणा, **जा**—यावत्, तक, **पमत्तोत्ति**—प्रमत्तसंयतगुणस्थान।

गाथार्थ—अयोगि के प्रकृतिस्थानों को छोड़कर नाम और गोत्र कर्म के शेष प्रकृतिस्थान उदय के समान जानना तथा शेष (वेदनीय और आयु) की उदीरणा प्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त होती है।

विशेषार्थ—अयोगिगुणस्थान सम्बन्धी आठ प्रकृति के उदय रूप और नौ प्रकृति के उदय रूप इन दो प्रकृतिस्थानों को छोड़कर शेष बीस, इक्कीस आदि प्रकृतिक नामकर्म के प्रकृतिस्थान उदय के समान ही उदीरणाधिकार में जानना चाहिये। अर्थात् जैसे वे स्थान उदय में हैं, वैसे ही उदीरणा में भी हैं, ऐसा समझना चाहिये।

अयोगिकेवलीगुणस्थान सम्बन्धी आठ और नौ प्रकृतिक उदय को छोड़ने का कारण यह है कि उदीरणा योग के निमित्त से होने से और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयोगिकेवली भगवान योग का अभाव होने से किसी भी कर्म की उदीरणा नहीं करते हैं। इसलिये आठ प्रकृति रूप और नौ प्रकृति रूप प्रकृतिस्थान अयोगिकेवली को उदय में होते हैं परन्तु उदीरणा में नहीं होते हैं। शेष बीस, इक्कीस आदि प्रकृतिक स्थान उदय की तरह उदीरणा में भी सामान्यतः सप्रभेद जानना चाहिये।

गोत्र के सम्बन्ध में जहाँ-जहाँ उच्चगोत्र या नीचगोत्र का उदय नहीं होता, उसको छोड़कर शेष उदय उदीरणासहित जानना चाहिये। अर्थात् जब-जब और जहाँ-जहाँ उच्चगोत्र या नीचगोत्र का उदय हो वहाँ-वहाँ और तब-तब उदीरणा भी साथ में होती है। मात्र चौदहवें गुणस्थान में योग का अभाव होने से उच्चगोत्र का उदय होने पर भी उदीरणाहीन होता है, यह समझना चाहिये।

साता-असातावेदनीय और मनुष्यायु की प्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त उदीरणा जानना चाहिये, आगे अप्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों में नहीं। क्योंकि वे गुणस्थान अति विशुद्ध परिणाम वाले हैं। वेदनीय और आयु की उदीरणा घोलमान परिणाम में होती है और वैसे परिणाम छठे प्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त ही होते हैं।

इति शब्द अधिक अर्थ का सूचक होने से शेष तीन आयु की और मनुष्यायु की भी अन्तिम आवलिका में उदीरणा नहीं होती है, केवल उदय ही होता है।[1]

इस प्रकार से प्रकृति-उदीरणा की वक्तव्यता जानना चाहिये। अब क्रमप्राप्त स्थिति-उदीरणा का वर्णन प्रारम्भ करते हैं।

स्थिति-उदीरणा

स्थिति-उदीरणा की वक्तव्यता के पांच अर्थाधिकार हैं—१. लक्षण, २. भेद, ३. साद्यादि प्ररूपणा, ४. अद्धाछेद और ५. स्वामित्व। इनमें से पहले लक्षण और भेद इन दो विषयों का प्रतिपादन करते हैं।

---

१ सुगम बोध के लिये उक्त कथन का दर्शक प्रारूप परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्षण और भेद

पत्तोदयाए इयरा सह वेयइ ठिइउदीरणा एसा ।
बेआवलिया हीणा जावुक्कोसत्ति पाउग्गा ॥२५॥

शब्दार्थ—पत्तोदयाए—उदयप्राप्त, **इयरा**—इतर—उदय-अप्राप्त, **सह**—साथ, **वेयइ**—वेदन की जाती है, **ठिइउदीरणा**—स्थिति-उदीरणा, **एसा**—वह, **बेआवलिया**—दो आवलिका, **हीणा**—न्यून, **जावुक्कोसत्ति**—उत्कृष्टस्थिति पर्यन्त, **पाउग्गा**—प्रायोग्य ।

गाथार्थ—उदयप्राप्त स्थिति के साथ जो इतर—उदय-अप्राप्त स्थिति वेदन की जाती है, वह स्थिति-उदीरणा है और वह दो आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त उदीरणाप्रायोग्य है ।

विशेषार्थ—गाथा में स्थिति-उदीरणा का लक्षण एवं उसके भेदों का निरूपण किया है। उनमें से स्थिति-उदीरणा का लक्षण इस प्रकार है—

उदयप्राप्त स्थिति के साथ 'इयरा' उदय-अप्राप्त, उदयावलिका से ऊपर रही हुई स्थिति को वीर्यविशेष के द्वारा आकर्षित कर, खींचकर जो वेदन किया जाता है, उसे स्थिति-उदीरणा कहते हैं । यद्यपि स्थिति के समयों को खींचकर उसका प्रक्षेप या अनुभव नहीं होता है । क्योंकि काल खींचा नहीं जाता है, परन्तु उदयावलिका के बीतने के बाद उस-उस समय में भोगने के लिये नियत हुए दलिकों को वीर्यविशेष से खींचकर उदयावलिका में जो समय—स्थितिस्थान हैं उनके साथ भोगने-योग्य किये जाते हैं । तात्पर्य यह कि उदयावलिका के बाद किसी भी समय भोगने योग्य दलिकों को उदीरणाकरण द्वारा उदयावलिका के साथ भोगनेयोग्य किये जाते हैं ।

यद्यपि उदीरणा दलिकों की ही होती है, परन्तु उस-उस स्थिति-स्थान में रहे हुए कर्मदलिकों को उदीरित किया जाता है, इसीलिये इस प्रकार की उदीरणा को स्थिति-उदीरणा कहते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार से स्थिति-उदीरणा का लक्षण जानना चाहिये। अब भेदों का प्रतिपादन करते हैं—

ज्ञानावरण आदि कर्मों की दो आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति जितनी हो, उतनी उत्कृष्ट से उदीरणायोग्य स्थिति है। यानि दो आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त के जितने समय होते हैं, उतने स्थितिस्थान उदीरणा के योग्य हैं।

अब इसी बात को स्पष्ट करते हैं—उदय होने पर जिन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है, उनकी उत्कृष्ट से दो आवलिका न्यून समस्त स्थिति उदीरणायोग्य है। जैसे कि ज्ञानावरण आदि जिन प्रकृतियों का उदय हो तब उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, उनकी बंधावलिका जाने के बाद उदयावलिका से ऊपर की समस्त स्थिति की उदीरणा की जाती है। इस प्रकार उदयबंधोत्कृष्टा प्रकृतियों की आवलिकाद्विक न्यून उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट उदीरणायोग्य होती है तथा जिन नरकगति आदि कर्मप्रकृतियों का उदय—रसोदय न हो तब उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, उनका यथासंभव उदय हो तब जितनी स्थिति सत्ता में होती है, उसमें से उदयावलिका रहित शेष स्थितियां उदीरणायोग्य होती हैं।

दो आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति के जितने समय हों उतने स्थिति-उदीरणा के प्रभेद जानना चाहिये। वे इस प्रकार—उदयावलिका से ऊपर की समय मात्र स्थिति किसी को उदीरणायोग्य होती है कि जिसे सत्ता में उतनी ही स्थिति शेष रही हो। इसी तरह किसी को दो समयमात्र, किसी को तीन समयमात्र, इस प्रकार बढ़ते हुए यावत् किसी को दो आवलिका न्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है। जिससे आवलिकाद्विक न्यून उत्कृष्ट स्थिति के जितने समय उतने उदीरणा के स्थान-भेद समझना चाहिये।

इस प्रकार से उदीरणा के भेदों का कथन करने के अनन्तर अब क्रमप्राप्त साद्यादि प्ररूपणा का विचार करते हैं। यह प्ररूपणा मूल-

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

प्रकृतिविषयक और उत्तर प्रकृतिविषयक इस तरह दो प्रकार की है। उसमें से पहले मूल प्रकृति-सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा करते हैं।

मूल प्रकृति सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा

वेयणियाऊण दुहा चउव्विहा मोहणीय अजहन्ना।
पंचण्ह साइवज्जा सेसा सव्वेसु दुविगप्पा ॥२६॥

शब्दार्थ—**वेयणियाऊण**—वेदनीय और आयु की, **दुहा**—दो प्रकार, **चउव्विहा**—चार प्रकार, **मोहणीय**—मोहनीय की, **अजहन्ना**—अजघन्य, **पंचण्ह**—पांच की, **साइवज्जा**—सादि को छोड़कर, **सेसा**—शेष, **सव्वेसु**—सब कर्मों में, **दुविगप्पा**—दो प्रकार।

गाथार्थ वेदनीय और आयु की अजघन्य उदीरणा के दो प्रकार, मोहनीय के चार प्रकार और शेष पांच कर्म के सादि के बिना तीन प्रकार हैं। सब कर्मों में शेष विकल्प के दो प्रकार हैं।

विशेषार्थ— वेदनीय और आयु की अजघन्य स्थिति-उदीरणा सादि और अध्रुव-सांत इस प्रकार दो तरह की है। वह इस प्रकार—वेदनीय की जघन्य स्थिति की उदीरणा अति अल्पस्थिति की सत्ता वाले एकेन्द्रिय को होती है। समयान्तर—कालान्तर में बढ़ती सत्ता वाले उसी के अजघन्य स्थिति की उदीरणा होती है तथा जघन्य स्थिति की सत्ता वाला हो तब उसी के जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है। इस तरह जघन्य से अजघन्य और अजघन्य से जघन्य उदीरणा होते रहने से वे दोनों सादि-अध्रुव (सांत) हैं।

आयु की जघन्य स्थिति की उदीरणा के सिवाय शेष समस्त अजघन्य स्थिति-उदीरणा है और वह समयाधिक पर्यन्तावलिका शेष रहे तब नहीं होती है। क्योंकि समयाधिक पर्यन्तावलिका शेष रहे तब जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है तथा परभव में उत्पत्ति के प्रथम समय मे अजघन्य स्थिति-उदीरणा होती है, अतः वह सादि-सांत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अध्रुव) है एवं जघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट यह तीनों विकल्प सादि-सांत हैं। इनमें से जघन्य का विचार तो अजघन्य स्थिति-उदीरणा के प्रसंग में किया जा चुका है और उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा आयु का उत्कृष्ट बंध कर उसका जब उदय हो तब समय मात्र होती है। तत्पश्चात् अनुत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा होती है और वह समयाधिक आवलिका प्रमाण आयु शेष रहे तब तक होती है। समयाधिक आवलिका शेष रहे तब समय प्रमाण स्थिति की जघन्य उदीरणा होती है। इस तरह नियत काल पर्यन्त प्रवर्तित होने से ये तीनों विकल्प सादि-सांत हैं। तथा—

'चउव्विहा मोहणीय········'अर्थात् मोहनीय की अजघन्य स्थिति-उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस प्रकार—मोहनीय की जघन्य स्थिति-उदीरणा सूक्ष्मसंपराय-गुणस्थान में वर्तमान उपशमक अथवा क्षपक के उस गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब होती है। इसके सिवाय सर्वत्र अजघन्य उदीरणा होती है। वह उपशांतमोहगुणस्थान में होती नहीं, वहाँ से पतन होने पर होती है, अतः सादि है, उस स्थान को जिन्होंने प्राप्त नहीं किया उनके अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है। उसके शेष जघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट ये तीनों विकल्प सादि-सांत हैं। इनमें से मोहनीय की जघन्य स्थिति-उदीरणा दसवें गुणस्थान में उस गुणस्थान का समयाधिक आवलिका काल शेष रहे तब समय प्रमाण स्थिति की होती है और वह समय मात्र की होती होने से सादि-सांत है, उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा उत्कृष्ट संक्लेश में वर्तमान मिथ्यादृष्टि के कितनेक काल अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त तक होते होने से अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त होती है, उसके बाद अनुत्कृष्ट उदीरणा होती है एवं क्लिष्ट परिणाम के योग से उत्कृष्ट स्थिति बंधे तब उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा होती है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के विशुद्धि और संक्लेश परिणाम से उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो तब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा होती है। इसलिये वे दोनों सादि-सांत हैं।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, नाम और गोत्र इन पांच कर्मों की अजघन्य स्थिति-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। उसमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय की जघन्य स्थिति-उदीरणा क्षीणकषाय के उसकी समयाधिक आवलिका शेष रहे तब होती है और शेष काल में अजघन्य होती है। वह अजघन्य स्थिति-उदीरणा अनादि काल से हो रही होने से अनादि है, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है।

नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति-उदीरणा सयोगिकेवली के चरमसमय में होती है, उसको एक समय मात्र होने से सादि-सांत है। उसके सिवाय शेष सभी अजघन्य स्थिति-उदीरणा है। वह अनादि काल से हो रही है, अतएव अनादि है। अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है। शेष जघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट विकल्प सादि, अध्रुव हैं। जो इस प्रकार—इन पांचों कर्मों की जघन्य स्थिति-उदीरणा में सादि-अध्रुव भंग अजघन्य स्थिति-उदीरणा के प्रसंग में कहे जा चुके हैं और उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा मोहनीयकर्म की तरह मिथ्यादृष्टि को परावर्तन के क्रम से होने के कारण सादि-सांत है।

इस प्रकार से मूल प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा का आशय जानना चाहिए। अब उत्तरप्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा करते हैं।

उत्तर प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा

मिच्छत्तस्स चउहा धुवोदयाणं तिहा उ अजहन्ना।
सेसविगप्पा दुविहा सव्वविगप्पा उ सेसाणं ॥२७॥

शब्दार्थ—**मिच्छत्तस्स**—मिथ्यात्व की, **चउहा**—चार प्रकार की, **धुवोदयाणं**—ध्रुवोदया प्रकृतियों की, **तिहा**—तीन प्रकार की, **उ**—और, **अजहन्ना**—अजघन्य, **सेसविगप्पा**—शेष विकल्प, **दुविहा**—दो प्रकार के, **सव्वविगप्पा**—सर्व विकल्प, **उ**—और, **सेसाणं**—शेष प्रकृतियों के।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—मिथ्यात्व की अजघन्य स्थिति-उदीरणा चार प्रकार की और ध्रुवोदया प्रकृतियों की तीन प्रकार की है। उनके शेष विकल्प और शेष प्रकृतियों के सर्व विकल्प दो प्रकार के हैं।

विशेषार्थ—मूल कर्मों की उत्तरप्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा मिथ्यात्व प्रकृति से प्रारम्भ की है।

मिथ्यात्व की अजघन्य स्थिति-उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। जो इस तरह जानना चाहिये—**प्रथमोपशम सम्यक्त्व** उत्पन्न करते मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति समयाधिक आवलिका शेष रहे तब मिथ्यादृष्टि के जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है और वह एक समय पर्यन्त होने से सादि-सान्त है। सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व में जाते मिथ्यात्व की अजघन्य स्थिति-उदीरणा की शुरुआत होती है, इसलिए सादि है। अभी तक जिन्होंने प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया, उनकी अपेक्षा अनादि, अभव्य की अपेक्षा ध्रुव-अनन्त और भव्य की अपेक्षा अध्रुव-सांत स्थिति उदीरणा होती है।

ज्ञानावरणपंचक, दर्शनावरणचतुष्क, अंतरायपंचक, तैजससप्तक, वर्णादि बीस, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु और निर्माण इन ध्रुवोदया सैंतालीस प्रकृतियों की अजघन्य स्थिति-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। जो इस प्रकार से जानना चाहिए—ज्ञानावरणपचक अन्तरायपंचक और दर्शनावरणचतुष्क इन चौदह प्रकृतियों की जघन्य स्थिति-उदीरणा क्षीणकषायगुणस्थान की समयाधिक, आवलिका शेष रहे तब होती है और वह एक समय पर्यन्त होने से सादि-सांत है। उसके सिवाय शेष सभी अजघन्य स्थिति उदीरणा है। वह अनादिकाल से प्रवर्तित होने से अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है। तथा—

तैजससप्तक आदि नामकर्म की तेतीस प्रकृतियों की जघन्य स्थिति-उदीरणा सयोगिकेवली को चरमसमय में होती है। एक समय पर्यन्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने से वह सादि-सांत है। उसके अतिरिक्त अन्य सब अजघन्य स्थिति-उदीरणा है और वह अनादिकाल से प्रवर्तित है, अतः अनादि, अभव्य के ध्रुव-अनन्त और भव्य के अध्रुव-सांत है।

उपर्युक्त मिथ्यात्व आदि अड़तालीस प्रकृतियों के उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य रूप शेष विकल्प दुविहा— सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकार के हैं। उन्हें इस तरह जानना चाहिये—उपर्युक्त समस्त प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा उत्कृष्ट संक्लेश में वर्तमान मिथ्यादृष्टि के कितनेक काल (अन्तर्मुहूर्त) पर्यन्त होती है। तत्पश्चात् समयान्तर-कालान्तर में (अन्तर्मुहूर्त के बाद) अनुत्कृष्ट, इस प्रकार एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद पहली इस तरह के क्रम से उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट उदीरणा प्रवर्तित होने से सादि, अध्रुव-सांत है और अजघन्य उदीरणा के कथन प्रसंग में यह पहले बताया जा चुका है कि जघन्य स्थिति-उदीरणा सादि, अध्रुव-सांत इस तरह दो प्रकार की है।

उक्त प्रकृतियों के अतिरिक्त शेष अध्रुवोदया एक सौ दस प्रकृतियों के उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये सभी विकल्प उनके अध्रुवोदया होने से ही सादि-अध्रुव, इस तरह दो प्रकार के हैं।

इस प्रकार से स्थिति-उदीरणा की साद्यादि प्ररूपणा का आशय जानना चाहिये। अब स्वामित्व और अद्धाछेद प्ररूपणाओं का प्रतिपादन प्रारम्भ करने से पूर्व सम्बन्धित सामान्य नियम का निरूपण करते हैं—

सामित्ताद्धाछेया इह ठिइसंकमेण तुल्लाओ।
बाहुल्लेण विसेसं जं जाणं ताण तं वोच्छं ॥२८॥

शब्दार्थ—सामित्ताद्धाछेया—स्वामित्व और अद्धाच्छेद, **इह**—यहाँ-स्थिति-उदीरणा में, **ठिइसंकमेण**—स्थितिसंक्रम के, **तुल्लाओ**—तुल्य, **बाहुल्लेण**—बहुलता से, **विसेसं**—विशेष, **जं**—जो, **जाणं**—जिसके विषय में, **ताण**—उसके सम्बन्ध में, **तं**—उसको, **वोच्छं**—कहूँगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—यहाँ स्वामित्व और अद्धाच्छेद बहुलता से प्रायः स्थितिसंक्रम के तुल्य हैं किन्तु जिसके विषय में जो विशेष है उसके सम्बन्ध में कहूँगा।

विशेषार्थ—यहाँ—स्थिति-उदीरणा के विषय में उत्कृष्ट या जघन्य स्थिति की उदीरणा का स्वामी कौन है और कितनी स्थिति की उदीरणा होती है तथा कितनी की नहीं होती है, यह अधिकांशत स्थिति-संक्रम के तुल्य-समान है। अर्थात् जैसे पूर्व में संक्रमकरण में स्थिति-संक्रम के विषय में जितनी उत्कृष्ट या जघन्य स्थिति का संक्रम होता है और जितनी स्थिति का संक्रम नहीं होता, उस प्रकार का अद्धाच्छेद कहा है, उसी प्रकार यहाँ—स्थिति-उदीरणा के अधिकार में भी बहुलता से जानना चाहिये। मात्र जिन प्रकृतियों के सम्बन्ध में जो विशेष है, उसको यथास्थान कहा जायेगा।

इस स्पष्टीकरण को ध्यान में रखकर अब स्थिति-उदीरणास्वामित्व की प्ररूपणा करते हैं।

उत्कृष्ट जघन्य स्थिति-उदीरणास्वामित्व

अंतोमुहुत्तहीणा सम्मे मिस्संमि दोहि मिच्छस्स।
आवलिदुगेण हीणा बंधुक्कोसाण परमठिई ॥२९॥

शब्दार्थ—अंतोमुहुत्तहीणा—अन्तर्मुहूर्त न्यून, **सम्मे मिस्संमि**—सम्यक्त्व, मिश्र की, **दोहि**—दो, **मिच्छस्स**—मिथ्यात्व की, **आवलिदुगेण**—आवलिकाद्विक से, **हीणा**—न्यून, **बंधुक्कोसाण**—बंधोत्कृष्टा प्रकृतियों की, **परमठिई**—उत्कृष्ट स्थिति।

गाथार्थ—सम्यक्त्व की उदीरणायोग्य स्थिति मिथ्यात्व की अंतर्मुहूर्तहीन उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है और मिश्र की दो अन्तर्मुहूर्त से हीन है तथा बंधोत्कृष्टा प्रकृतियों की आवलिकाद्विकहीन उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व की अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति सम्यक्त्वमोहनीय में संक्रमित होती है। संक्रमित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुई उदयावलिका से ऊपर की उस स्थिति को उसके उदय वाला क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि उत्कीर्ण करता है, जिससे कुल अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम सम्यक्त्व की स्थिति उदीरणायोग्य होती है तथा मिथ्यात्व की अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति मिश्रमोहनीय में संक्रमित होती है। वहाँ (चतुर्थ गुणस्थान में) अन्तर्मुहूर्त रहकर तीसरे गुणस्थान में जाये तो वह मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव उदयावलिका से ऊपर की दो अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति को उत्कीर्ण करता है। अर्थात् दो अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

उक्त कथन का विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—कोई मिथ्यादृष्टि तीव्र संक्लेश परिणाम के योग से मिथ्यात्वमोहनीय की उत्कृष्ट सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति बांधे और बांधकर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त मिथ्यात्व में रहकर (क्योंकि उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध करके अन्तर्मुहूर्त अवश्य मिथ्यात्व में ही रहता है) सम्यक्त्व प्राप्त करे[1] तो वह सम्यक्त्वी अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण मिथ्यात्व की समस्त स्थिति को सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय में संक्रमित करता है। अन्तर्मुहूर्तन्यून सम्यक्त्वमोहनीय की वह उत्कृष्ट स्थिति संक्रमावलिका व्यतीत होने के बाद उदीरणायोग्य होती है। संक्रमावलिका व्यतीत होने पर भी वह स्थिति अन्तर्मुहूर्तन्यून ही कहलाती है।[2] इसीलिये सम्यक्त्वमोहनीय की अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य कही है। तथा—

---

१ करण किये बिना जो जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है, उसकी अपेक्षा यह कथन संभव है। किन्तु जो यथाप्रवृत्त आदि करण करके चढ़ता है, उसे तो अन्तःकोडाकोडी सागरोपम की ही सत्ता रहती है।

२ मात्र संक्रमावलिका अन्तर्मुहूर्त में मिल जाने से वह अन्तर्मुहूर्त बड़ा हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई एक जीव सम्यक्त्व गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त रहकर[1] मिश्र-गुणस्थान प्राप्त करे, वहाँ मिश्रमोहनीय का अनुभव करते उदयावलिका से ऊपर की मिश्रमोहनीय की दो अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।[2] तथा—

ज्ञानावरणपंचक, अंतरायपंचक, दर्शनावरणचतुष्क, तैजस्‌सप्तक वर्णादि बीस, निर्माण, अस्थिर, अशुभ, अगुरुलघु, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, दुःस्वर, दुर्भग, अनादेय, अयशः-कीर्ति, वैक्रियसप्तक, पंचेन्द्रियजाति, हुण्डकसंस्थान, उपघात, पराघात, उच्छ्‌वास, असातावेदनीय, उद्योत, अशुभ विहायोगति और नीचगोत्र रूप छियासी उदयबंधोत्कृष्टा प्रकृतियों[3] की आवलिकाद्विकन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

वह इस प्रकार—उपर्युक्त प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध करके बंधावलिका जाने के बाद उदयावलिका से ऊपर की समस्त स्थिति की उदीरणा की जाती है। इसलिये उदयबंधोत्कृष्टा प्रकृतियों की आवलिकाद्विकन्यून अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य कही है।

उपर्युक्त प्रकृतियों की उदीरणायोग्य स्थिति कहकर अब अद्धाच्छेद बतलाते हैं। जितनी स्थिति की उदीरणा न हो उतनी उदीरणा के

---

१ जैसे उत्कृष्ट स्थिति का बंधकर अन्तर्मुहूर्त मिथ्यात्व में रहने के बाद सम्यक्त्व प्राप्त करता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व प्राप्त करने के बाद अन्तर्मुहूर्त सम्यक्त्व गुणस्थान में रहने के बाद ही मिश्रगुणस्थान प्राप्त करता है। दर्शनमोहनीयत्रिक की उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता पंचम आदि गुणस्थानों में नहीं होती।

२ यहाँ प्रत्येक स्थान पर उदयावलिका से ऊपर की स्थिति की उदीरणा होती है, परन्तु उदयावलिका को अन्तर्मुहूर्त में मिला दिये जाने से अन्तर्मुहूर्त-न्यून कहा है। किन्तु अन्तर्मुहूर्त उतना बड़ा लेना चाहिये।

३ जिन प्रकृतियों का उदय हो और उस समय उत्कृष्ट स्थिति का बंध हो तो वे उदयबंधोत्कृष्टा प्रकृतियां कहलाती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयोग्य स्थिति अद्धाच्छेद कहलाती है। अतः सम्यक्त्वमोहनीय का अन्तर्मुहूर्त, मिश्रमोहनीय का दो अन्तर्मुहूर्त[1] और उदयबंधोत्कृष्टा प्रकृतियों का दो आवलिका अद्धाच्छेद है।[2] उस-उस प्रकृति के उदय वाले उतनी-उतनी स्थिति की उदीरणा के स्वामी हैं। तथा—

मणुयाणुपुव्विआहारदेवदुगसुहुमवियलतिअगाणं ।
आयावस्स य परिवडणमंतमुहुहीणमुक्कोसा ॥३०॥

शब्दार्थ—**मणुयाणुपुव्वि**—मनुष्यानुपूर्वी, **आहारदेवदुग**—आहारकद्विक, देवद्विक, **सुहुमवियलतिअगाणं**—सूक्ष्मत्रिक विकलत्रिक की, **आयावस्स**—आतप की, **य**—और, **परिवडणं**—पतन हो, **अंतमुहुहीणमुक्कोसा**—अन्तर्मुहूर्त-न्यून उत्कृष्ट स्थिति।

गाथार्थ—मनुष्यानुपूर्वी, आहारकद्विक (सप्तक), देवद्विक, सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक और आतप की उत्कृष्ट स्थिति का बंध करके पतन हो तब उन प्रकृतियों की अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट-स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

विशेषार्थ—मनुष्यानुपूर्वी, आहारकसप्तक, देवगति, देवानुपूर्वी रूप देवद्विक, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण रूप सूक्ष्मत्रिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति रूप विकलत्रिक तथा आतपनाम इन सत्रह प्रकृतियों की जो उत्कृष्ट स्थिति है, उसको बांधकर, उस बंध से पतन हो तब अर्थात् उनका बंध कर लेने के बाद अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

जिसका विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

कोई एक जीव तथाप्रकार के परिणामविशेष से नरकानुपूर्वी की

---

१ उदयावलिका से ऊपर की स्थिति की उदीरणा होती है, जिससे उदयावलिका भी अद्धाच्छेद में ही मानी जाती है। अतएव अन्तर्मुहूर्त से ऊपर उदयावलिका को भी अद्धाच्छेद कहना चाहिये था परन्तु यहाँ उदयावलिका को अन्तर्मुहूर्त में ही समाविष्ट कर दिये जाने से पृथक् निर्देश नहीं किया है।

२ अद्धाच्छेद को सुगमता से समझने के लिए प्रारूप परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

बीस कोडाकोडी सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति को बांधकर और उसके बाद शुभपरिणामविशेष से मनुष्यानुपूर्वी की पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बांधना प्रारंभ करे तो बध्यमान उस मनुष्यानुपूर्वी की स्थिति में बंधावलिकातीत हुई और उदयावलिका से ऊपर की कुल दो आवलिका न्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण नरकानुपूर्वी की स्थिति को मनुष्यानुपूर्वी की उदयावलिका से ऊपर संक्रमित करता है। अर्थात् मनुष्यानुपूर्वी की कुल स्थिति एक आवलिका न्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण होती है। मनुष्यानुपूर्वी का बंध होने पर जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त बंध होता है। जिससे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति आवलिकान्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम में से कम होती है। उसको बांधने के बाद काल करके अनन्तर समय में मनुष्य होकर मनुष्यानुपूर्वी का अनुभव करके अन्तर्मुहूर्तन्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उसकी स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

प्रश्न—जैसे मनुष्यगति की पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम स्थिति बंधती है, उसी प्रकार मनुष्यानुपूर्वी की भी उतनी ही बंधती है। दोनों में से एक की भी बीस कोडाकोडी सागरोपम स्थिति नहीं बंधती है। इसीलिये इन दोनों प्रकृतियों को संक्रमोत्कृष्टा कहा है। जब उन दोनों में संक्रमोत्कृष्टा समान है, तब जैसे मनुष्यगति की तीन आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य कही है, वैसे ही मनुष्यानुपूर्वी की तीन आवलिकान्यून बीस कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति कहना चाहिये।

उत्तर—इसका कारण यह है कि मनुष्यानुपूर्वी अनुदयसंक्रमोत्कृष्टा और मनुष्यगति उदयसंक्रमोत्कृष्टा[1] प्रकृति है। उदयसंक्रमोत्कृष्टा प्रकृ-

---

१ उदय रहते संक्रम द्वारा जितनी उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता होती है वे उदयसंक्रमोत्कृष्टा और उदय न हो तब संक्रम द्वारा जिनकी उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता होती है, वे अनुदयसंक्रमोत्कृष्टा कहलाती हैं।

अनुदय संक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियां इस प्रकार हैं—मनुष्यानुपूर्वी, मिश्रमोहनीय, आहारकद्विक, देवद्विक, विकलत्रिक, सूक्ष्मत्रिक और तीर्थंकरनाम।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तियों की संक्रमावलिका बीतने के बाद उदय होने पर उदयावलिका से ऊपर की स्थिति की उदीरणा की जा सकती है। जिससे उसकी तीन आवलिका न्यून उत्कृष्टस्थिति उदीरणायोग्य होती है और अनुदयसंक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियों का (उनमें उत्कृष्ट स्थिति का संक्रम होने के बाद) अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् उदय होता है, जिससे उनकी अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है। तथा—

आहारकसप्तक की अप्रमत्त तद्योग्य उत्कृष्ट संक्लेश द्वारा उत्कृष्ट-स्थिति बांधता है। उसमें उसी समय स्वमूल प्रकृति से अभिन्न किसी अन्य उत्तर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति वाला दलिक संक्रमित हो, जिससे संक्रम द्वारा आहारकद्विक की उत्कृष्ट अन्तःकोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्टस्थिति की सत्ता होती है।[1] उस आहारकद्विक को बांधने के बाद अन्तर्मुहूर्त ठहरकर आहारकशरीर करना प्रारम्भ करे, तो उसको आरम्भ करता जीव लब्धि को करने में उत्सुकता वाला होने से अवश्य प्रमादयुक्त होता है। यानि आहारकशरीर उत्पन्न करने पर आहारकसप्तक की अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्टस्थिति उदीरणायोग्य होती है। तथा—

---

१ आहारकद्विक बांधने के बाद अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर ही उसका स्फुरण होता है। स्फुरण यानि उदय और उदय हो तभी उदीरणा होती है। इसीलिए आहारकसप्तक की अन्तर्मुहूर्तन्यून उदीरणा बताई है। आहारकसप्तक का अप्रमत्त बंध करता है। वहाँ चाहे जैसे संक्लिष्ट परिणाम हों, परन्तु अन्तःकोडाकोडी से अधिक बंध नहीं होता है एवं वहाँ किसी भी प्रकृति की अन्तःकोडाकोडी से अधिक सत्ता नहीं होती है। इतना अवश्य है कि आहारक में संक्रमित होने वाली अन्य प्रकृतियों की स्थितिसत्ता आहारक की स्थितिसत्ता से अधिक होती है। इसलिए यह कहा है कि संक्रमित होने के बाद आहारक की सत्ता उत्कृष्ट अन्तःकोडाकोडी होती है।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कोई एक जीव तथाविध परिणामविशेष से नरकगति को बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बांधकर शुभ परिणाम विशेष से देवगति की दस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बांधना प्रारम्भ करे तो बधती हुई उस देवगति की स्थिति में उसकी उदयावलिका से ऊपर बंधावलिका जिसकी बीत गई है, ऐसी और उदयावलिका से ऊपर की कुल दो आवलिकान्यून नरकगति की समस्त स्थिति संक्रमित करता है, जिससे देवगति की एक आवलिका न्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता होती है। देवगति को बांधते हुए जघन्य से अन्तमुहूर्त पर्यन्त बांधता है। वह अन्तर्मुहूर्त आवलिकान्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण देवगति की उत्कृष्ट स्थितिसत्ता में से कम होता है। बांधने के बाद काल करके अनन्तर समय में देव हो तो देवत्व अनुभव करते हुए उसे देवगति की अंतमुहूर्त न्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

प्रश्न—उक्त युक्ति के अनुसार आवलिका अधिक अन्तमुहूर्तन्यून स्थिति उदीरणायोग्य होती है तो फिर अन्तर्मुहूर्तन्यून क्यों कहा है ?

उत्तर—यहाँ अन्तर्मुहूर्तन्यून कहने में कोई दोष नहीं है। क्योंकि अन्तमुहूर्त में आवलिका का प्रक्षेप किया जाये तो भी वह अन्तर्मुहूर्त ही होता है, मात्र उसे बड़ा समझना चाहिये। इसी प्रकार देवानुपूर्वी के लिये भी तथा शेष विकलत्रिक आदि प्रकृतियों की भी उदीरणा-योग्य उत्कृष्ट स्थिति का स्वयमेव विचार कर लेना चाहिये।

उक्त प्रश्नोत्तर का आशय यह है कि देवगति का उत्कृष्ट स्थिति-बंध करने के बाद अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर मरण को प्राप्त हो और वह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति प्रदेशोदय द्वारा भोग ली जाती है, इसलिए अन्तर्मुहूर्तन्यून कही है और आवलिकान्यून बीस कोडाकोडी की तो देवगति की उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता ही होती है। किसी भी संक्रमो-त्कृष्टा प्रकृति की अपनी मूलप्रकृति की स्थिति जितनी सत्ता नहीं होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इसलिये आवलिका अधिक अन्तर्मुहूर्तन्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति-उदीरणा क्यों नहीं कही ? इसके उत्तर में बताया गया है कि दो आवलिकाओं को अन्तमुहूर्त में ही गर्भित कर दिया गया है, जिससे बड़ा अन्तर्मुहूर्त ग्रहण करने का संकेत किया है।

प्रश्न—अनुदयसंक्रमोत्कृष्टा स्थिति वाली उपर्युक्त प्रकृतियों की अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है, ऐसा जो ऊपर कहा है, वह युक्तियुक्त है। परन्तु आतपनाम तो बंधोत्कृष्टा प्रकृति है। इसलिये ज्ञानावरणादि की तरह उसकी बंधावलिका और उदयावलिका इस तरह आवलिकाद्विकन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य प्राप्त होती है, तो फिर अन्तर्मुहूर्तन्यून क्यों कहा है ?

उत्तर—इसका कारण यह है कि ज्ञानावरणादि उदयबंधोत्कृष्टा प्रकृतियां हैं और आतपनाम अनुदयबंधोत्कृष्टा प्रकृति है। अनुदयबंधोत्कृष्टा प्रकृतियों की अनुदयसंक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियों की तरह अन्तर्मुहूर्तन्यून ही उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

अब आतपनाम की उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा का विचार करते हैं—उत्कृष्ट संक्लेश में वर्तमान ईशान तक के देव ही एकेन्द्रियप्रायोग्य आतप, स्थावर और एकेन्द्रियजाति नाम की उत्कृष्ट स्थिति बांधते हैं, अन्य कोई नहीं बांधते हैं। वे देव आतपनाम की उत्कृष्ट स्थिति बांधकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त देवभव में ही मध्यम परिणाम से रहकर काल करके खर बादर पृथ्वीकाय में उत्पन्न होते हैं। वहाँ उत्पन्न होकर शरीरपर्याप्ति से पर्याप्ति होने के बाद आतपनाम के उदय में वर्तमान उसकी उदीरणा करते हैं, इसीलिये यह कहा है कि आतपनाम की अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

आतप का ग्रहण उपलक्षण है, अतएव अन्य स्थावर, एकेन्द्रियजाति, नरकद्विक, तिर्यंचद्विक, औदारिकसप्तक, सेवार्तसंहनन, निद्रापंचक रूप उन्नीस अनुदयबंधोत्कृष्टा प्रकृतियों की अन्तर्मुहूर्तन्यून

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य है। इनमें स्थावर और एकेन्द्रियजाति की भावना आतप के समान ही समझना चाहिए। तथा—

नरकद्विक के सम्बन्ध में विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अथवा मनुष्य नरकद्विक की उत्कृष्ट स्थिति बांधता है, उत्कृष्ट स्थिति का बंध करने के बाद अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर नीचे की पांचवीं, छठी और सातवीं में से किसी भी नरकपृथ्वी में उत्पन्न हो[1] तो उसे जिस समय नरकायु का उदय हो, उसी समय अन्तर्मुहूर्त-न्यून बीस कोडाकोडी सागर प्रमाण नरकगति की उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है। मात्र नरकानुपूर्वी की अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति की उदीरणा विग्रहगति में ही होती है। तथा—

कोई एक नारक औदारिकसप्तक, तिर्यंचद्विक और अन्तिम संहनन इन प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति बांधकर उसके बाद मध्यम परिणाम वाला हो, वहीं अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रहकर तिर्यंचगति में उत्पन्न हो तो तिर्यंचगति में उत्पन्न हुआ वह अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति की उदीरणा करता है। तथा—

निद्रापंचक की भी अनुदय में उत्कृष्ट संक्लेश से उत्कृष्ट स्थिति बांधकर अन्तर्मुहूर्त बीतने के बाद निद्रा के उदय में वर्तमान अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्टस्थिति की उदीरणा करता है। निद्रा का जब उदय हो तब उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम नहीं होते हैं, परन्तु मध्यम परिणाम होते हैं, जिससे उसका उदय न हो तभी तीव्र संक्लिष्ट परिणाम से उसकी उत्कृष्ट स्थिति बंधती है और उत्कृष्ट स्थिति बांधने के बाद अन्तर्मुहूर्त जाने के अनन्तर ही उदय में आती है और उदय हो तभी

---

१ इन तीन नरकप्रायोग्य—नरकगति लायक कर्म बांधते नरकद्विक की उत्कृष्ट स्थिति का बंध होता है, अन्य नरकप्रायोग्य बांधने पर मध्यम स्थिति बंधती है, इसलिए नीचे की तीन नरक पृथ्वियां ली हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदीरणा होती है, अतएव अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा-योग्य होती है। तथा—

मनुष्यगति, सातावेदनीय, स्थिरषट्क, हास्यषट्क, तीन वेद, शुभ विहायोगति आदि, संहननपंचक आदि, संस्थानपंचक और उच्चगोत्र रूप उनतीस उदयसंक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियों की तीन आवलिका बंधावलिका, संक्रमावलिका और उदयावलिका न्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा-योग्य समझना चाहिए। मनुष्यगति आदि में उत्कृष्ट से कितनी स्थिति संक्रमित होती है, सक्रमित होने के बाद उनकी कितनी स्थिति की सत्ता होती है और उसमें से कितनी उदीरित की जाती है, यह सब लक्ष्य में रखकर उत्कृष्ट स्थिति की उदीरणा कहने योग्य है। जैसे कि—

नरकगति की बंधावलिका के जाने के बाद ऊपर की उदयावलिका, इस तरह दो आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति संक्रमित होती है और जिसमें संक्रमित होती है, उसकी उदयावलिका से ऊपर ही संक्रमित होती है। इसका कारण यह है कि जिसकी स्थिति संक्रमित होती है उसकी उदयावलिका से ऊपर की स्थिति संक्रमित होती है और जिसमें संक्रमित होती है उसकी उदयावलिका को मिलाने पर एक आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता होती है। संक्रमावलिका के जाने के बाद उदयावलिका से ऊपर की स्थिति की उदीरणा होती है, जिससे ऊपर कहे अनुसार तीन आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

यहाँ प्रत्येक स्थान पर दो या तीन आवलिका अथवा अन्तर्मुहूर्त जितना काल उदीरणा के अयोग्य कहा है, अतः उतना अद्धाच्छेद और जिस-जिस प्रकृति का जिसको उदय हो, उस जीव को उस-उस प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति की उदीरणा का स्वामी समझना चाहिए। तथा—

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

हयसेसा तित्थठिई पल्लासंखेज्जमेत्तिया जाया ।
तीसे सजोगि पढमे समए उद्दीरणुक्कोसा ॥३१॥

शब्दार्थ—**हयसेसा**—कम होते-होते शेष, **तित्थठिई**—तीर्थंकरनाम की स्थिति, **पल्लासंखेज्जमेत्तिया**—पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र, **जाया**—रह गई, **तीसे**—उसकी, **सजोगि**—सयोगिकेवली के **पढमे समए**—प्रथम समय में, **उद्दीरणुक्कोसा**—उत्कृष्ट उदीरणा ।

गाथार्थ—कम होते-होते तीर्थंकरनाम की स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग शेष रह गई, उसकी सयोगिकेवली के प्रथम समय में जो उदीरणा होती है, वह उसकी उत्कृष्ट उदीरणा कहलाती है ।

विशेषार्थ—केवलज्ञान प्राप्त करने के पूर्व अपवर्तित-अपवर्तित करके —अपवर्तनाकरण द्वारा कम-कम करके तीर्थंकरनाम की पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र स्थिति बाकी रखकर कम करते करते शेष रही उतनी स्थिति की सयोगिकेवलीगुणस्थान के प्रथम समय में जो उदीरणा होती है, वह तीर्थंकरनाम की उत्कृष्ट उदीरणा कहलाती है सर्वदा उत्कृष्ट से भी तीर्थंकरनाम की इतनी ही स्थिति उदीरणायोग्य होती है, अधिक नहीं ।

प्रश्न—तीर्थंकरनाम की स्थिति तीसरे भव में निकाचित बांधने के। बाद उसकी अपवर्तना कैसे होतो है ? निकाचितबंध करने के बाद अपवर्तना क्यों ?

उत्तर—प्रश्न उचित है । लेकिन जितनी स्थिति निकाचित होती है, उसकी तो अपवर्तना नहीं होती, परन्तु अधिक स्थिति की अपवर्तना होती है । जीवस्वभाव से जिस समय में तीर्थंकरनाम निकाचित होता है, उससे उसकी जितनी आयु बाकी हो उतनी, भवान्तर की और उसके बाद के मनुष्यभव की जितनी आयु होना हो, उतनी स्थिति ही निकाचित होती है, अधिक नहीं । निकाचित स्थिति तो भोगकर ही पूर्ण की जाती है । उससे ऊपर की जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति रही कि जिसमें करण लग सकता है, उसको कम करके सयोगि के प्रथम समय में पल्योपम के असंख्यातवें भाग रखकर उसकी जो उदीरणा की जाती है, उसे उत्कृष्ट उदीरणा कहते हैं, यह समझना चाहिये।

चारों आयु का अपना अपना उत्कृष्ट स्थितिबंध होने के बाद जब उसका उदय हो तब उदय के प्रथम समय में उस-उस आयु की उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा होती है और उसी को उत्कृष्ट उदीरणा कहते हैं। उस-उस आयु का उदय वाला जीव उसका स्वामी है।

इस प्रकार अद्धाच्छेद और उत्कृष्ट उदीरणास्वामित्व की प्ररूपणा जानना चाहिए। अब जघन्य स्थिति-उदीरणास्वामित्व का कथन करते हैं।

जघन्य स्थिति-उदीरणास्वामित्व

भयकुच्छआयवुज्जोयसव्वघाईकसाय निद्दाणं।
अतिहीणसंतबंधो जहण्णउद्दीरगो अतसो ॥३२॥

शब्दार्थ—**भयकुच्छ**—भय, जुगुप्सा, **आयवुज्जोय**—आतप, उद्योत, **सव्वघाईकसाय**—सर्वघाति कषायों, **निद्दाणं**—निद्राओं की, **अतिहीणसंतबंधो**—अतिहीन सत्ता और बंध वाला, **जहण्णउद्दीरगो**—जघन्य स्थिति का उदीरक, **अतसो**—अत्रस—स्थावर।

गाथार्थ—अतिहीन सत्ता और बंध वाला स्थावर भय, जुगुप्सा, आतप, उद्योत, सर्वघाति कषायों और निद्रा की जघन्य स्थिति का उदीरक है।

विशेषार्थ—अति अल्प स्थिति की सत्ता वाला और सत्ता की अपेक्षा कुछ अधिक या समान ही नवीन कर्म का बंध करने वाला स्थावर जीव भय, जुगुप्सा, आतप, उद्योत, आदि की अनन्तानुबंधि आदि बारह सर्वघाति कषायों और निद्रापंचक कुल इक्कीस प्रकृतियों की बंधावलिका बीतने के बाद जघन्य स्थिति-उदीरणा करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका कारण यह है कि उसे सत्ता में अति जघन्य स्थिति है और नवीन बंध भी सत्ता के समान या कुछ अधिक करता है, जिससे उपर्युक्त प्रकृतियों की उदीरणा का स्वामी स्थावर है। स्थावर से त्रस को बंध और सत्ता अधिक होती है, इसीलिए उसका निषेध किया है।

उक्त इक्कीस प्रकृतियों में से आतप और उद्योत के सिवाय उन्नीस प्रकृतियां ध्रुवबंधिनी होने से और आतप, उद्योत की कोई प्रतिपक्षी प्रकृति न होने से एवं इन प्रकृतियों की जितनी अल्प स्थिति की उदीरणा स्थावर करता है, उससे अल्प अन्य कोई नहीं कर सकने से, उक्त स्वरूप वाला स्थावर इन प्रकृतियों की जघन्य स्थिति का उदीरक कहा है।[1] तथा—

> एगिंदियजोगाणं पडिवक्खा बंधिऊण तव्वेई।
> बंधालिचरमसमये तदागए सेसजाईणं ॥३३॥

शब्दार्थ—**एगिंदियजोगाणं**—एकेन्द्रिय के योग्य, **पडिवक्खा**—प्रतिपक्षा प्रकृतियों को, **बंधिऊण**—बांधकर, **तव्वेइ**—तद्वेदक, **बंधालिचरमसमये**—बंधावलिका के चरम समय में, **तदागए**—उसमें से—एकेन्द्रिय में से, आया हुआ, **सेसजाईणं**—शेष जातियों की।

गाथार्थ—प्रतिपक्षा प्रकृतियों को बांधकर बधावलिका के चरम समय में तद्वेदक एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है। उसमें से- एकेन्द्रिय में से—आया हुआ शेष जातियों की इसी प्रकार जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

---

१ निद्राद्विक का ग्यारहवें गुणस्थान तक उदय होता है और वहाँ उसकी स्थिति सत्ता एकेन्द्रिय से भी न्यून सम्भव है, अतएव उसकी जघन्य स्थिति की उदीरणा वहाँ कहना चाहिए, परन्तु कही नहीं है। विज्ञजन स्पष्ट करने की कृपा करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—एकेन्द्रियों के ही उदीरणायोग्य प्रकृतियां जैसे कि—एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम। इन प्रकृतियों की जघन्य स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय उन-उन प्रकृतियों की प्रतिपक्षा प्रकृतियों[1] को बांधकर बंधावलिका के चरम समय में उन-उन प्रकृतियों का उदय वाला जीव जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

तात्पर्य यह है कि सर्व जघन्य—अल्पातिअल्प स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय द्वीन्द्रियादि चारों जातियों को क्रमपूर्वक बांधे और क्रमपूर्वक उन चारों जातिनामकर्म को बांधने के पश्चात् एकेन्द्रियजाति को बांधना प्रारम्भ करे तो उसकी बंधावलिका के चरम समय में वह एकेन्द्रिय अपनी जाति की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

उपर्युक्त स्वरूप वाले एकेन्द्रिय को अपनी जाति की जघन्य स्थिति का उदीरक कहने का पहला कारण यह है कि वह एकेन्द्रियजाति की कम से कम स्थिति की सत्ता वाला है और दूसरा यह है कि जितने काल अपनी प्रतिपक्षी द्वीन्द्रियादि जातिनामकर्म को बांधता है, उतने काल प्रमाण एकेन्द्रियजाति की स्थिति को भोगने के द्वारा न्यून करता है, जिससे सत्ता में अल्प स्थिति रहती है और सत्ता में अति अल्प स्थिति रहने से उदीरणा भी अति अल्प स्थिति की ही होती है, जिससे उपर्युक्त स्वरूप वाले एकेन्द्रिय जीव को अपनी जाति की जघन्य स्थिति का उदीरक कहा है। इसी कारण अति जघन्य स्थिति की सत्ता और प्रतिपक्षी प्रकृति का बंध, इन दोनों को ग्रहण किया है तथा चारों जातियों को बांधने के पश्चात् एकेन्द्रियजाति की बंधावलिका के चरम समय में जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है, कहने का कारण यह है कि बंधावलिका पूर्ण होने के अनन्तरवर्ती समय में बंधावलिका के प्रथम समय में बांधी गई लता का भी उदय होने से उदी-

१ एकेन्द्रियजाति की प्रतिपक्षी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जाति हैं तथा स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम की प्रतिपक्षी अनुक्रम से त्रस, बादर और प्रत्येक नाम हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रणा होती है और वैसा हो तो उदीरणा में स्थिति बढ़ जाती है। इसलिए बंधावलिका के चरम समय में जघन्य उदीरणा होती है, यह कहा है।

जिस तरह से एकेन्द्रियजाति की जघन्य स्थिति-उदीरणा का निर्देश किया है, उसी प्रकार से स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नामकर्म की भी जघन्य स्थिति-उदीरणा जानना चाहिये। उन तीनों की प्रतिपक्ष प्रकृति अनुक्रम से त्रस, बादर और प्रत्येक नाम हैं जैसे कि स्थावरनाम की अति जघन्यस्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय जितनी अधिक बार त्रसनामकर्म बांध सके, उतनी अधिक बार बांधे, तत्पश्चात् स्थावरनामकर्म बांधना प्रारम्भ करे तो उसको बंधावलिका के चरम समय में वह एकेन्द्रिय स्थावरनामकर्म की जघन्यस्थिति की उदीरणा करता है। इसी प्रकार सूक्ष्म आदि के लिये भी समझ लेना चाहिये। तथा—

एकेन्द्रिय के भव में से आगत द्वीन्द्रियादि जीव अपनी-अपनी जाति को इसी प्रकार जघन्य स्थिति की उदीरणा करते हैं। जिसका तात्पर्य इस प्रकार है - कोई जघन्य स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय उस भव में से निकलकर द्वीन्द्रिय में उत्पन्न हो, वहाँ पूर्व में बांधी हुई द्वीन्द्रियजाति का अनुभव करना प्रारम्भ करे। अनुभव के—उदय के प्रथम समय से लेकर दीर्घकाल पर्यन्त एकेन्द्रियजाति का बंध करे और उसके बाद त्रीन्द्रियजाति दीर्घकालपर्यन्त बांधे। इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जाति को क्रमपूर्वक बांधे। किन्तु मात्र जिस जाति की जघन्य स्थिति की उदीरणा कहना हो उस जाति को अंत में बांधे इतना विशेष है। इस प्रकार चार बड़े अन्तर्मुहूर्त व्यतीत होते हैं, उतने काल पर्यन्त द्वीन्द्रिय जाति को अनुभव द्वारा कम करे, उसके बाद द्वीन्द्रिय जाति को बांधना प्रारम्भ करे। उसकी बंधावलिका के चरम समय में एकेन्द्रिय भव में से जितनी जघन्य स्थिति की सत्ता लेकर आया था, उसकी अपेक्षा चार अन्तर्मुहूर्त न्यून द्वीन्द्रियजाति की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

क्रमपूर्वक चार जाति के बंध का और बंधावलिका के चरम समय में उदीरणा का जो कारण एकेन्द्रियजाति की जघन्यस्थिति की उदीरणा के प्रसंग में कहा है, वही यहाँ भी जानना चाहिये।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जातिनाम की जघन्यस्थिति उदीरणा भी कहना चाहिये। तथा—

दुभगाइनीयतिरिदुगअसारसंघयण नोकसायाणं।
मणुपुव्वऽपज्जतइयस्स सन्निमेवं इगागयगे ॥३४॥

शब्दार्थ—दुभगाइ—दुर्भग आदि, **नीय**—नीचगोत्र, **तिरिदुग**—तिर्यंचद्विक, **असारसंघयण**—असार संहनन—प्रथम को छोड़कर शेष पांच संहनन, **नोकसायाणं**—नोकषायों की, **मणुपुव्व**—मनुष्यानुपूर्वी, **अपज्जतइयस्स**—अपर्याप्तनाम, तीसरे वेदनीय कर्म की, **सन्निमेवं**—संज्ञी इसी प्रकार, **इगागयगे**—एकेन्द्रिय में से आये हुए।

गाथार्थ—एकेन्द्रिय में से आये संज्ञी में दुर्भगादि, नीचगोत्र, तिर्यंचद्विक, असार संहनन, नोकषाय, मनुष्यानुपूर्वी, अपर्याप्त, तीसरे वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—दुर्भग आदि तीन—दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति, नीचगोत्र, तिर्यंचद्विक—तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, असारसंहनन—प्रथम के सिवाय शेष पांच संहनन, नोकषाय[1]—हास्य, रति, अरति, शोक, ये चार तथा मनुष्यानुपूर्वी, अपर्याप्तनाम और तीसरा साता-असाता रूप वेदनीय कर्म, कुल मिलाकर उन्नीस प्रकृतियों की जघन्य

---

१ वेदत्रिक के लिये आगे कहा जायेगा और भय एवं जुगुप्सा के लिये पूर्व में कहा जा चुका है। अतएव यहाँ नोकषाय शब्द से हास्यादि उक्त चार प्रकृतियों का ग्रहण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति-उदीरणा एकेन्द्रिय भव में से आये[1] संज्ञी पंचेन्द्रिय में होती है।

जिसका आशय इस प्रकार है—जघन्य स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय-एकेन्द्रिय भव में से निकलकर पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो। उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर दुर्भगनामकर्म का अनुभव करता हुआ दीर्घ अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सुभगनाम को बांधे और उसके बाद दुर्भगनाम बांधना प्रारम्भ करे, उसके बाद बंधावलिका के चरम समय में पूर्वबद्ध दुर्भगनामकर्म की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

इसी प्रकार अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र को भी जघन्य स्थिति—उदीरणा कहना चाहिये। मात्र वहाँ आदेय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र रूप प्रतिपक्षी प्रकृतियों का अनुक्रम से बंध जानना चाहिये। तथा—

सर्व जघन्य स्थिति की सत्ता वाला बादर तेज और वायुकाय का

---

१ यहाँ दुर्भगत्रिक आदि उन्नीस प्रकृतियों की जघन्य स्थिति-उदीरणा एकेन्द्रिय में से आये संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव की बताई है परन्तु मनुष्यानुपूर्वी और पांच संहनन के बिना तेरह प्रकृतियों का उदय एकेन्द्रियादि जीवों के भी होता है। एकेन्द्रियादि जीवों में जघन्य स्थिति की उदीरणा न बताकर संज्ञी पंचेन्द्रिय में ही बताने का कारण यह है कि शेष जीवों की अपेक्षा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के परावर्तमान बंधयोग्य प्रत्येक प्रकृति का बंधकाल संख्यातगुणा है, जिससे एकेन्द्रियादि जीवों की अपेक्षा संज्ञी पंचेन्द्रिय में अधिक जघन्य स्थिति-उदीरणा प्राप्त होती है। इसी कारण एकेन्द्रिय में से आये हुए पंचेन्द्रिय जीव ही बताये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव[1] पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न हो, वहाँ भव के प्रथम समय से लेकर बड़े अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त मनुष्यगति का बंध करे और उसके बाद तिर्यंचगति बांधना प्रारम्भ करे। बंधावलिका के चरम समय में पूर्वबद्ध उस तिर्यंचगति की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

तिर्यंचगत्यानुपूर्वी की जघन्य स्थिति-उदीरणा भी इसी प्रकार जानना चाहिये किन्तु मात्र विग्रहगति में और उसके तीसरे समय में होती है। तिर्यंचगति का उदय तो विग्रह-अविग्रह दोनों स्थानों पर होता है, परन्तु आनुपूर्वी का उदय तो विग्रहगति में ही होता है। इसलिये उसकी जघन्य स्थिति की उदीरणा विग्रहगति में और अधिक काल निकालने के लिये तीसरा समय कहा है।

इसी प्रकार असार पांच संहननों में से वेद्यमान संहनन को छोड़ कर शेष पांचों संहननों का बंधकाल अति दीर्घ और उसके बाद वेद्यमान संहनन का बंध कहना चाहिये एवं बंधावलिका के चरम समय में वेद्यमान असार संहनन की जघन्य स्थितिउदीरणा होती है।[2]

हास्य, रति की जघन्य स्थिति-उदीरणा साता की तरह और शोक-अरति की जघन्य स्थिति-उदीरणा असातावेदनीय की तरह कहना चाहिये।

---

१ अन्य एकेन्द्रियों की अपेक्षा तेजरकाय, वायुकाय में तिर्यंचगतिनाम की स्थिति की जघन्य सत्ता होती है ऐसा ज्ञात होता है, जिससे उन दोनों का ग्रहण किया है। परावर्तमान प्रकृतियां उनकी विरोधिनी अन्य प्रकृतियां बंधती हों तब अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त ही बंधती हैं। इसीलिये अन्तर्मुहूर्त बंधकाल का संकेत किया है। अपर्याप्त अवस्था में देव, नरकगति का बंध होता नहीं, इसलिये मात्र मनुष्यगति का बंध ग्रहण किया है।

२ जघन्य स्थिति की उदीरणा कहने का क्रम जातिनामकर्म की तरह ही जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अल्पातिअल्प मनुष्यानुपूर्वी की स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय एकेन्द्रिय भव में से निकलकर मनुष्य में उत्पन्न हो। विग्रहगति में वर्तमान वह मनुष्य अपनी आयु के तीसरे समय में मनुष्यानुपूर्वी की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है। तथा—

अपर्याप्तनाम की अति जघन्य स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय एकेन्द्रिय भव में से निकलकर अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो। भव के प्रथम समय से लेकर बड़े अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त पर्याप्त नामकर्म का बन्ध करे और उसके बाद अपर्याप्त नामकर्म बांधना प्रारम्भ करे तो बंधावलिका के चरम समय में पूर्वबद्ध उस अपर्याप्तनामकर्म की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

सातावेदनीय की अति जघन्य स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय एकेन्द्रियभव में से निकलकर पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो। उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर सातावेदनीय का अनुभव करता हुआ बड़े अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त असातावेदनीय को बांधे, उसके बाद पुनः साता को बांधना प्रारम्भ करे तो बंधावलिका के चरम समय में पूर्वबद्ध सातावेदनीय की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

इसी प्रकार असातावेदनीय की भी जघन्य स्थिति-उदीरणा कहना चाहिये। मात्र सातावेदनीय के स्थान में असातावेदनीय और असातावेदनीय के स्थान पर सातावेदनीय पद कहना चाहिये। तथा—

अमणागयस्स चिरठिइअन्ते देवस्स नारयस्स वा।
तदुवंगगईणं आणुपुव्विणं तइयसमयंमि ॥३५॥

शब्दार्थ—अमणागयस्स—असंज्ञी पंचेन्द्रिय में से आया हुआ, **चिरठिइअन्ते**—दीर्घ स्थिति के अन्त में, **देवस्स**—देव के, **नारयस्सा**—नारक के, **वा**—अथवा, **तदुवंगगईणं**—तद् (वैक्रिय) अंगोपांग, देवगति, नरकगति, **आणुपुव्विणं**—आनुपूर्वी की, **तइयसमयंमि**—तीसरे समय में।

गाथार्थ—असंज्ञी पंचेन्द्रिय में से आये हुए देव अथवा नारक के अपनी-अपनी आयु की दीर्घ स्थिति के अन्त में वैक्रिय-अंगोपांग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरक-गति, देवगति की तथा आनुपूर्वी की अपनी-अपनी आयु के तीसरे समय में जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—असंज्ञी पंचेन्द्रिय में से निकलकर देव अथवा नारक में आये हुए के अपनी अपनी आयु की दीर्घ स्थिति के अन्त में वैक्रिय-अंगोपांग, देवगति और नरकगति की जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है तथा देवानुपूर्वी और नरकानुपूर्वी की अपनी-अपनी आयु के तीसरे समय में जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।

इसका तात्पर्य यह है कि कोई असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव देवगति आदि की अति अल्प स्थिति बांधकर और उसके बाद असंज्ञी पंचेन्द्रिय में ही दीर्घकाल पर्यन्त[1] रहकर पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण आयु

---

१ यहाँ दीर्घकाल कितना, इसका संकेत नहीं किया है। परन्तु कोई पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाला असंज्ञी हो और उस आयु का अमुक थोड़ा भाग जाने के बाद जघन्य स्थिति से उपर्युक्त तीन प्रकृतियों का बंध करे, तत्पश्चात् बंध न करे, इस प्रकार हो तो दीर्घकाल पर्यन्त असंज्ञी में रहना घटित हो सकता है। ऐसा जीव पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण देव अथवा नरक आयु बांधकर देव या नारक में उत्पन्न हो। असंज्ञी उससे अधिक आयु नहीं बांधते हैं। उतने काल वहाँ उदय, उदीरणा से स्थिति कम करे, जिससे अपनी-अपनी आयु के चरम समय में जघन्य स्थिति की उदीरणा घटित हो सकती है।

कदाचित् यह शंका हो कि तेतीस सागरोपम के आयु वाले देव, नारक को चरम समय में जघन्य स्थिति-उदीरणा क्यों नहीं कही ? तो इसका उत्तर यह है कि उतनी आयु की स्थिति बांधने वाला संज्ञी पर्याप्त ही होता है और वह उक्त प्रकृतियों की अन्तः कोडाकोडी से कम स्थिति नहीं बांधता है और असंज्ञी तो उक्त प्रकृतियों की पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून २/७ भाग ही जघन्य स्थिति बांधता है। जिससे असंज्ञी में से आये हुए देव, नारक के ही जघन्य स्थिति-उदीरणा सम्भवित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाला देव अथवा नारक हो, तो अपनी अपनी आयु के चरम समय में वर्तमान उस देव अथवा नारक के यथायोग्य देवगति, नरकगति और वैक्रिय-अंगोपांग की जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय में से आये हुए परन्तु विग्रहगति में अपनी-अपनी आयु के तीसरे समय में वर्तमान देव अथवा नारक के अनुक्रम से देवानुपूर्वी और नरकानुपूर्वी की जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है। तथा—

वेयतिगं दिट्ठिदुगं संजलणाणं च पढमट्ठिईए।
समयाहिगालियाए सेसाए उवसमे वि दुसु ॥३६॥

शब्दार्थ—**वेयतिगं**—वेदत्रिक की, **दिट्ठिदुगं**—दृष्टिद्विक की, **संजलणाणं**—संज्वलन कषायों की, **च**—और, **पढमट्ठिईए**—प्रथम स्थिति में, **समयाहिगालियाए**—समयाधिक आवलिका के, **सेसाए**—शेष रहने पर, **उवसमे वि**—उपशम श्रेणि में भी, **दुसु**—दोनों में।

गाथार्थ——प्रथम स्थिति में समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहने पर वेदत्रिक, दृष्टिद्विक, और संज्वलन कषायों की जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है। सम्यक्त्वमोहनीय और संज्वलन लोभ की दोनों श्रेणि में और शेष प्रकृतियों की क्षपक श्रेणि में ही जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—जब अन्तरकरण (अन्तर डालने की क्रिया) प्रारम्भ करे तब नीचे की छोटी स्थिति प्रथम स्थिति और ऊपर की बड़ी स्थिति द्वितीय स्थिति कहलाती है। प्रथम स्थिति की समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे, तब वेदत्रिक—स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद, दृष्टिद्विक—सम्यक्त्व और मिथ्यात्व मोहनीय और संज्वलनकषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ इन नौ प्रकृतियों की उदयावलिका से ऊपर की समय मात्र स्थिति ही उदीरणा योग्य होने से उस समय प्रमाण स्थिति की उदीरणा जघन्य स्थिति उदीरणा कहलाती है। मात्र सम्यक्त्वमोहनीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और संज्वलन लोभ की उपशम, क्षपक दोनों श्रेणियों में[1] और शेष प्रकृतियों की क्षपकश्रेणि में ही जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है। तथा—

एगिंदागय अइहीणसत्त सण्णीसु मीसउदयंते।
पवणो सट्ठिइ जहण्णगसमसत्त विउव्वियस्संते ॥३७॥

शब्दार्थ—**एगिन्दागय**—एकेन्द्रिय में से आया हुआ, **अइहीणसत्त**—अतिहीन सत्ता वाला, **सण्णीसु**—संज्ञी में, **मीसउदयंते**—मिश्रमोहनीय के उदय के अंत में, **पवणो**—वायुकाय, **सट्ठिइ**—स्वस्थिति, **जहण्णगसमसत्त**—जघन्य स्थिति के समान सत्ता वाला, **विउव्वियस्संते**—वैक्रिय (षट्क) के उदय के अंत में।

गाथार्थ—अतिहीन सत्ता वाला एकेन्द्रिय में से निकलकर संज्ञी में आया हुआ जीव उदय के अन्त में मिश्रमोहनीय की तथा अपनी जघन्य स्थिति के समान वैक्रियषट्क की सत्ता वाला वायु-कायिक जीव उदय के अन्त में वैक्रियषट्क की जघन्य स्थिति-उदीरणा करता है।

---

१ यहाँ सम्यक्त्वमोहनीय और संज्वलन लोभ की दोनों श्रेणि में और शेष प्रकृतियों की मात्र क्षपकश्रेणि में ही जघन्य स्थिति-उदीरणा कही है। दोनों श्रेणि में क्यों नहीं कही, इसका कारण समझ में नहीं आया। क्योंकि दोनों श्रेणियों में प्रथम स्थिति की समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे तब उदयावलिका से ऊपर की समय प्रमाण स्थिति ये अति जघन्यतम स्थिति है और उसकी उदीरणा जघन्य स्थिति-उदीरणा कहलाती है। तत्त्व बहुश्रुतगम्य है। मिथ्यात्व की तो प्रथम सम्यक्त्व प्राप्त करते प्रथम स्थिति की समयाधिक आवलिका स्थिति शेष रहे तब जघन्य स्थिति-उदीरणा संभावित है। क्योंकि श्रेणि में तो सर्वथा उपशम या क्षय करते उसका रसोदय नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून एक सागरोपम प्रमाण अतिहीन मिश्रमोहनीय की स्थितिसत्ता वाला कोई एकेन्द्रिय एकेन्द्रिय भव में से निकलकर संज्ञी पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो और वहाँ उसे जिस समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त के बाद मिश्रमोहनीय की उदीरणा दूर होगी उस समय वह मिश्रगुणस्थान प्राप्त करे। अन्तर्मुहूर्त के चरम समय में— मिश्रगुणस्थान के चरम समय में वह जीव मिश्रमोहनीय की जघन्य स्थिति-उदीरणा करता है। एकेन्द्रिय को कम से कम जितनी स्थिति की सत्ता हो सकती है, उससे हीन स्थिति वाली मिश्रमोहनीय प्रकृति उदीरणायोग्य नहीं रहती है। क्योंकि पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून सागरोपम से भी जब स्थिति कम होती है तब मिथ्यात्वमोहनीय का उदय संभव होने से मिश्रमोहनीय की उद्वलना होना सम्भव है।[1] तथा—

बध्यमान नामकर्म की प्रकृतियों की जितनी जघन्य स्थितिसत्ता हो सकती है, उतनी यानि कि पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून सागरोपम के सात भाग में से दो भाग (२/७) प्रमाण वैक्रियषट्क—वैक्रियशरीर, वैक्रियसंघात, वैक्रियबंधनचतुष्टय—की स्थिति की सत्ता वाला वायु-

---

१ एकेन्द्रिय कम से कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून सागरोपम के तीन भाग, दो भाग सागरोपम आदि स्थिति तो बांधते हैं, जिससे बध्यमान प्रकृतियों की स्थितिसत्ता उससे तो कम हो नहीं सकती। अवध्यमान वैक्रियषट्क आदि प्रकृतियों की उससे भी जब स्थिति कम होती है तब उद्वलना संभव होने से वह उदययोग्य नहीं रहता है। इसीलिये मिश्रमोहनीय के लिए कहा है कि पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून सागरोपम से भी जब उसकी स्थितिसत्ता कम होती है तब उसकी उद्वलना होती है। इसीलिये मिश्रमोहनीय की पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून सागरोपम प्रमाण स्थिति जघन्य उदीरणायोग्य कही है—उससे न्यून नहीं। क्योंकि उससे हीन स्थिति उदययोग्य ही नहीं रहती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायिक जीव उद्वलन योग्य होने से पूर्व अंतिम बार वैक्रियशरीर की विकुर्वणा करे तब उस षट्क के उदय के अन्त समय में उनकी जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि पल्योपम के असंख्यातवें भाग हीन सागरोपम के सात में से दो भाग (२/७) प्रमाण वैक्रियषट्क की जघन्य स्थिति की सत्ता वाला पर्याप्त बादर वायुकायिक जीव अनेक बार वैक्रियशरीर की विकुर्वणा करके अन्तिम बार वैक्रियशरीर की विकुर्वणा प्रारम्भ करे तब उसके उदय के चरम समय में वैक्रियषट्क की जघन्य स्थिति-उदीरणा करता है। तत्पश्चात् अति हीन स्थिति की सत्ता वाले उस वैक्रियषट्क की उद्वलना सम्भव है।

एकेन्द्रिय के अंगोपांग का उदय न होने से वैक्रिय-अंगोपांग का ग्रहण नहीं किया है। तथा—

चउरुवसमित्तु मोहं मिच्छं खविउं सुरोत्तमो होउं।
उक्कोससंजमंते जहण्णगाहारगदुगाणं ॥३८॥

शब्दार्थ—**चउरुवसमित्तु**—चार बार उपशम करके, **मोहं** – मोहनीय का, **मिच्छं**—मिथ्यात्व का, **खविउं**—क्षय करके, **सुरोत्तमो**—उत्तम देव, **होउं**—होकर, **उक्कोससंजमंते**—उत्कृष्ट काल तक संयम पालकर अन्त में, **जहण्णगाहारगदुगाणं**—आहारकद्विक की जघन्य (स्थिति-उदीरणा)।

गाथार्थ—मोहनीय का चार बार उपशम करके उसके बाद मिथ्यात्व का क्षय करके उत्तम देव में उत्पन्न होकर फिर मनुष्य में उत्पन्न हो, वहाँ उत्कृष्ट काल तक संयम पालकर अंत में आहारकद्विक की जघन्य स्थिति-उदीरणा करता है।

विशेषार्थ—संसार में परिभ्रमण करते हुए चार बार मोहनीयकर्म का सर्वोपशम करके, तत्पश्चात् मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय[1]

---

१ गाथा में ग्रहण किया गया 'मिच्छ' पद अन्य दर्शनमोहनीय का उपलक्षण है। क्योंकि मिथ्यात्व का क्षय होने के बाद मिश्र, सम्यक्त्व मोहनीय का अवश्य क्षय होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का क्षय करके सवार्थसिद्ध महाविमान में उत्पन्न हो। सर्वार्थसिद्ध विमान की तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु पूर्ण करके पूर्व कोटि वर्ष की आयु से मनुष्य में उत्पन्न हो और मनुष्यभव में आठ वर्ष की उम्र होने के बाद चारित्र ग्रहण करे और उतने काल न्यून पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण संयम का पालन कर अंत में आहारक शरीर की विकुर्वणा करने वाला आहारकसप्तक के उदय के बाद कि जिस समय आहारक शरीर बिखर जायेगा और उदय का अंत होगा उस अंत समय में उसकी जघन्य स्थिति-उदीरणा करता है।

मनुष्यभव में देशोन पूर्वकोटि प्रमाण संयम के पालन के कारण उतने काल आहारक सप्तक की सत्तागत स्थिति का क्षय होता है और अन्त में अल्प स्थिति सत्ता में रहती है। इसीलिए पूर्वकोटि वर्ष के अन्त में आहारकशरीर करने वाले को जघन्य स्थिति की उदीरणा बतलाई है।

चार बार मोहनीय का सर्वोपशम कहने का कारण यह है कि उस स्थिति में आहारकसप्तक में संक्रमित होने वाली प्रकृतियों का स्थिति-घात होता है। जिससे आहारक के संक्रमयोग्य स्थान में अल्प स्थिति का संक्रम होता है तथा उस-उस समय अत्यन्त विशुद्ध परिणाम के योग से उसकी बंधयोग्य भूमिका में अल्प स्थिति का बंध होता है। सर्वार्थ-सिद्धि में उतने काल प्रदेशोदय से स्थिति कम करता है और नवीन बांधता नहीं। इसी कारण चार बार मोहनीय का उपशम और उसके बाद क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होने का संकेत किया है। तथा—

खीणंताणं खीणे मिच्छत्तकमेण चोद्दसण्हंपि।
सेसाण सजोगंते भिण्णमुहुत्तट्ठिईगाणं ॥३९॥

शब्दार्थ—खीणंताणं खीणे—क्षीणमोहगुणस्थान में जिनका क्षय होता है,, **मिच्छत्तकमेण**—मिथ्यात्व के क्रम से, **चोद्दसण्हंपि**—चौदह प्रकृतियों की भी **सेसाण**—शेष की, **सजोगन्ते**—सयोगिकेवलीगुणस्थान के अन्त में, **भिण्णमुहुत्त-ट्ठिईगाणं**—अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाली।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

गाथार्थ—क्षीणमोहगुणस्थान में जिनका क्षय होता है, ऐसी चौदह प्रकृतियों की मिथ्यात्व के क्रम से क्षीणमोहगुणस्थान में तथा अन्तर्मुहूर्त स्थिति वाली शेष प्रकृतियों की सयोगिकेवलीगुणस्थान के अन्त समय में जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—क्षीणमोहगुणस्थान में जिनका सत्ता में से नाश होता है, ऐसी ज्ञानावरणपंचक, दर्शनावरणचतुष्क और अन्तरायपंचक रूप चौदह प्रकृतियों की क्षीणमोहगुणस्थान में ही मिथ्यात्व की रीति से यानि जैसे मिथ्याथ्व की उदययोग्य समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे तब समय प्रमाण स्थिति की जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है, उसी प्रकार ज्ञानावरणपंचक आदि चौदह प्रकृतियों की समयाधिक आवलिका प्रणाम स्थिति सत्ता में शेष रहने पर जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।[1] तथा—

मनुष्यगति, पंचेन्द्रिजाति, प्रथम संहनन, औदारिकसप्तक, संस्थानषट्क, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, सुभग, सुस्वर दुःस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकरनाम और उच्चगोत्र रूप बत्तीस और निर्माण आदि ध्रुवोदया तेतीस कुल पैंसठ प्रकृतियों की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति की सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय में जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।

सयोगिकेवली के चरम समय में सत्तागत सभी प्रकृतियों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही सत्ता में होती है, जिसमें उदयावालिका से ऊपर की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति ही जघन्य उदीरणायोग्य रहती है। इसीलिए उक्त पैंसठ प्रकृतियों की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही जघन्य स्थिति-उदीरणा कही है। तथा—

---

१ मिथ्यात्व और चौदह प्रकृतियों में मात्र समय प्रमोण जघन्य स्थिति का ही साम्य है, अन्य नहीं। क्योंकि मिथ्यात्व का क्षय तो चौथे से सातवें गुणस्थान तक में ही हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारों आयु की भी उन-उनकी उदीरणा के अन्त में समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति सत्ता में शेष रहे, तब जघन्य स्थिति-उदीरणा समझना चाहिए।

स्थिति-उदीरणा के सम्बन्ध में विशेष वक्तव्य इस प्रकार है—

स्थिति-उदीरणा में कितने ही स्थान पर ऐसा आया है कि बंधावलिका के जाने के बाद उदयवलिका से ऊपर की स्थिति पतद्ग्रह प्रकृति की उदयावलिका से ऊपर संक्रमित होती है। ऐसा क्यों होता है? तो उसका कारण यह है कि जिसको स्थिति संक्रमित होती है, उसकी उदयावलिका से ऊपर की स्थिति संक्रमित होती है। अन्य प्रकृतिनयन-संक्रम में स्थान का परिवर्तन नहीं होने से जिसमें संक्रमित होती है, उसकी उदयावलिका से ऊपर संक्रमित होती है, यह कहा है। यानि उस उदयावलिका को मिलाने पर एक आवलिकान्यून उसकी उत्कृष्ट सत्ता होती है। जैसे कि नरकगति की उत्कृष्ट स्थिति बांधे, जिस समय उसकी बंधावलिका पूर्ण हो, उस समय देवगति बांधना प्रारम्भ करे, बध्यमान देवगति में उदयावलिका से ऊपर का नरकगति का दलिक संक्रमित होता है। उदयावलिका से ऊपर का नरकगति का दलिक देवगति की उदयावलिका से ऊपर संक्रमित हो, यानि उस उदयावलिका को मिलाने पर एक आवलिकान्यून बीस कोडाकोडी सागर प्रमाण देवगति की उत्कृष्ट स्थिति सत्ता में होती है तथा उसकी संक्रमावलिका के जाने के बाद उदयावलिका से ऊपर का दलिक अन्यत्र संक्रमित होता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

इस प्रकार से स्थिति उदीरणा का निरूपण जानना चाहिए।[1] अब क्रमप्राप्त अनुभाग-उदीरणा की प्ररूपणा प्रारम्भ करते हैं।

अनुभाग-उदीरणा

अणुभागुदीरणाए घाइसण्णा य ठाणसन्ना य।
सुहया विवागहेउ जोत्थ विसेसो तयं वोच्छं ॥४०॥

---

१ स्थिति-उदीरणा विषयक विवरण का प्रारूप परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**अणुभागुदीरणाए**—अनुभाग-उदीरणा में, **घाइसण्णा**—घाति, संज्ञा, **य**—और, **ठाणसन्ना**—स्थानसंज्ञा, **य**—और' **सुहया**—शुभाशुभत्व, **विवाग**—विपाक, **हेउ**—हेतु, **जोत्थ**—जो यहाँ, **विसेसो**—विशेष, **तयं**—उसको, **वोच्छं**—कहूँगा।

गाथार्थ—उदय के प्रसंग में जैसा घातिसंज्ञा, स्थानसंज्ञा, शुभाशुभत्व, विपाक और हेतु के लिए कहा गया है, वैसा ही अनुभाग-उदीरणा में भी समझना चाहिए। लेकिन यहाँ जो विशेष है, उसको में कहूंगा।

विशेषार्थ—अनुभाग उदीरणा के सम्बन्ध में छह विचारणीय विषय हैं यथा—१ संज्ञा-प्ररूपणा, २ शुभाशुभ-प्ररूपणा, ३ विपाक-प्ररूपणा, ४ हेतु-प्ररूपणा, ५ साद्यादि-प्ररूपणा और ६ स्वामित्व-प्ररूपणा।

इनमें से संज्ञा, शुभाशुभत्व, विपाक और हेतु के बारे में मात्र सूचना करते हैं कि संज्ञा दो प्रकार की है—१ घातिसंज्ञा, २ स्थान-संज्ञा। इनमें घातिसंज्ञा तीन प्रकार की है—१ सर्वघातिसंज्ञा, २ देश-घातिसंज्ञा और ३ अघातिसंज्ञा। स्थानसंज्ञा के चार प्रकार हैं—१ एक-स्थानक, २ द्विस्थानक, ३ त्रिस्थानक और ४ चतुःस्थानक। शुभत्व और अशुभत्व के भेद से शुभाशुभत्व के दो प्रकार हैं। यथा—मति-ज्ञानावरणादिक अशुभ हैं और सातावेदनीय आदि शुभ हैं। विपाक के चार प्रकार हैं—१ पुद्गलविपाक, २ क्षेत्रविपाक, ३ भवविपाक और ४ जीवविपाक। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के भेद से हेतु के पांच प्रकार हैं।

इनमें घातिसंज्ञा, स्थानसंज्ञा, शुभाशुभत्व, विपाक और हेतु जैसे बंध और उदय के आश्रय से पूर्व में कहे गये हैं, उसी प्रकार यहाँ—अनुभाग-उदीरणा में—भी जानना चाहिए। अर्थात् वहाँ जिन प्रकृतियों को बंध, उदय की अपेक्षा सर्वघाति आदि कहा गया हो, उसी प्रकार यहाँ उदीरणा में भी समझना चाहिए। लेकिन उनके सम्बन्ध में जो कुछ भी विशेष है, उसका यहाँ निर्देश किया जा रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संज्ञा सम्बन्धी विशेष

पुरिसित्थिविग्ध अच्चक्खुचक्खुसम्माण इगिदेठाणो वा ।
मणपज्जवपुंसाणं वच्चासो सेस बंधसमा ॥४१॥

शब्दार्थ—पुरिसित्थि—पुरुषवेद, स्त्रीवेद, **विग्घ**—अंतराय, **अच्चक्खु-चक्खुसम्माण**—अचक्षुदर्शनावरण, चक्षुदर्शनावरण, सम्यक्त्वमोहनीय की, **इगिदुठाणो**—एकस्थानक, द्विस्थानक, **वा**—और, **मणपज्जवपुंसाणं**—मनपर्याय ज्ञानावरण, नपुसंकवेद, **वच्चासो**—विपरीतता है, **सेस**—शेष की, **बंधसमा**—बंध के समान।

गाथार्थ—पुरुषवेद, स्त्रीवेद, अंतराय, अचक्षुदर्शनावरण, चक्षुवर्शनावरण और सम्यक्त्वमोहनीय के एक और द्वि स्थानक रस की उदीरणा होती है तथा मनपर्यायज्ञानावरण और सपुंसक-वेद के सम्बन्ध में विपरीतता है शेष प्रकृतियों की बंध के समान उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—गाथा में अनुभाग-उदीरणा के प्रसंग में संज्ञा से सम्बन्धित विशेषता का संकेत किया है—

पुरुषषेद, स्त्रीवेद, अंतरायपंचक, अचक्षुकदर्शनावरण, चक्षुदर्शनावरण, और सम्यक्त्वमोहनीय की अनुभाग-उदीरणा एक स्थानक और द्विस्थानक रस की जानना चाहिये। जिसका विशेषता से साथ स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

पुरुषवेद, अंतरायपंचक, अचक्षुदर्शनावरण, और चक्षुदर्शनावरण का बंधापेक्षा अनुभाग का विचार करें तो एक द्वि, त्रि, चतुस्थानक इस तरह चार प्रकार का रस बंधता है, किन्तु इन प्रकृतियों का रस की उदारणापेक्षा विचार किया जाये तो जघन्य से एकस्थानक और मंद द्विस्थानक रस की उदीरणा होती है और उत्कृष्ट से सर्वोत्कृष्ट द्विस्थानक रस की ही उदीरणा होती है परन्तु त्रि या चतुस्थानक रस की उदीरणा नहीं होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीवेद का द्विस्थानक, त्रिस्थानक और चतु:स्थानक इस तरह तीन प्रकार का रसबंध होता है परन्तु उसकी अनुभाग-उदीरणा जघन्य एकस्थानक और मंद द्विस्थानक रस की एवं उत्कृष्ट सर्वोत्कृष्ट द्विस्थानक रस की होती है।

सम्यक्त्वमोहनीय का बंध नहीं होने से उसके विषय में तो कुछ कहना नहीं है, परन्तु उदीरणा होती है, इसलिये उसके सम्बन्ध में विशेष का निर्देश करते हैं कि सम्यक्त्वमोहनीय की उत्कृष्ट द्विस्थानक रस की और जघन्य एकस्थानक रस की उदीरणा होती है तथा उसका जो एकस्थानक या द्विस्थानक रस है, वह देशघाती है।

मनपर्यायज्ञानावरण और नपुंसकवेद के लिये बंध में जो कहाँ है, उससे यहाँ विपरीत जानना चाहिये। यानि बंधाश्रयी नपुंसकवेद का जिस प्रकार का रस कहा है, उस प्रकार का रस मनपर्यायज्ञानावरण की उदीरणा में और बंधाश्रयी मनपर्यायज्ञानावरण का जैसा रस कहा है वैसा नपुंसकवेद की उदीरणा में समझना चाहिये। वह इस प्रकार—मनपर्यायज्ञानावरण का बंधापेक्षा एकस्थानक, द्विस्थानक, त्रिस्थानक और चतु:स्थानक इस तरह चार प्रकार का रस है और यहाँ उत्कृष्ट उदीरणापेक्षा चतु:स्थानक और अनुत्कृष्ट—मध्यम उदीरणापेक्षा चतुःस्थानक त्रिस्थानक और द्विस्थानक रस है। नपुंसकवेद का अनुभाग बन्ध की अपेक्षा चतु:स्थानक त्रिस्थानक और द्विस्थानक इस तरह तीन प्रकार का रस है और यहाँ उत्कृष्ट उदीरणापेक्षा चतुःस्थानक और अनुत्कृष्ट—मध्यम उदीरणापेक्षा चतु:स्थानक, त्रिस्थानक, द्विस्थानक और एकस्थानक रस है।

प्रश्न—जब नपुंसकवेद का एकस्थानक रस बंध होता ही नहीं है तो उदीरणा कैसे होती है ?

उत्तर—यद्यपि नपुंसकवेद का एकस्थानक रस बंधता नहीं है, परन्तु क्षय के समय रसघात करते सत्ता में उसका एकस्थानक रस संभव है। इसीलिये जघन्य से उसके एकस्थानक रस की उदीरणा कही है। तथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष देशघाति प्रकृतियों का बंध में जिस तरह चारों प्रकार का रस कहा है, उसी तरह अनुभाग-उदीरणा में भी चारों प्रकार का रस जानना चाहिये।

देशघाति प्रकृतियों का घातित्व विषयक विशेष

देसोवघाइयाणं उदए देसो व होइ सव्वो य।
देसोवघाइओ च्चिय अचक्खुसम्मत्तविग्घाणं ॥४२॥

शब्दार्थ—देसोवघाइयाणं—देशघाति प्रकृतियों की, **उदए**—उदय—उदीरणा में, **देसो**—देशघाति, **व**—अथवा, **होइ**—होता है, **सव्वो**—सर्वघाति, **य**—और, **देसोवघाइओ च्चिय**—देशघाति ही, **अचक्खुसम्मत्तविग्घाणं**—अचक्षुदर्शनावरण, सम्यक्त्वमोहनीय और अंतराय का।

गाथार्थ—देशघाति प्रकृतियों का उदय-उदीरणा में देशघाति अथवा सर्वघाति रस होता है तथा अचक्षुदर्शनावरण, सम्यक्त्व-मोहनीय और अंतराय का देशघाती ही रस उदय-उदीरणा में होता है।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा में जैसे यह कहा गया है कि किस प्रकार के रस की उदीरणा होती है, उसी प्रकार इस गाथा में यह स्पष्ट करते हैं कि वह रस कैसा होता है—घाति या अघाति ? देशघाति—ज्ञाना-वरणचतुष्क, चक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, नवनोकषाय और संज्वलनचतुष्करूप—प्रकृतियों का उदीरणारूप उदय में यानि उदीरणा में देशघाति रस होता है, उसी प्रकार सर्वघाति रस भी होता है किन्तु अचक्षुदर्शनावरण, सम्यक्त्वमोहनीय और अंतरायपंचक के रस की उदीरणा में देशघाति रस ही होता है, किन्तु सर्वघाति रस नहीं होता है। तथा—

घायं ठाणं च पडुच्च सव्वघाईण होई जह बंधे।
अग्घाईणं ठाणं पडुच्च भणिमो विसेसोऽत्थ ॥४३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—घायं—घातित्व, **ठाणं**—स्थान, **च**—और, **पडुच्च**—अपेक्षा, **सव्वघाईण**—सर्वघाति प्रकृतियों का, **होइ**—होता है, **जह**—जैसा, **बंधे**—बंध में, **अग्घाईण**—अघाति प्रकृतियों का, **ठाणं**—स्थान, **पडुच्च**—अपेक्षा, **भणिमो**—कहेंगे, **विसेसोऽत्थ**—जो विशेष है उसको यहाँ।

गाथार्थ—सर्वघाति प्रकृतियों का घातित्व और स्थान की अपेक्षा जैसा बंध में कहा है, वैसा उदीरणा में भी जानना चाहिये। अघाति प्रकृतियों का स्थान की अपेक्षा जो विशेष है, उसको यहाँ कहेंगे।

विशेषार्थ—केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, आदि की बारह कषाय, मिथ्यात्वमोहनीय और पांच निद्रारूप सर्वघाति प्रकृतियों के रस का घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा की अपेक्षा विचार करें तो उन प्रकृतियों का बंध में जैसा रस होता है, वैसा ही उदीरणा में भी समझना चाहिये।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि जैसे इन प्रकृतियों का बंध में चतुः-स्थानक, त्रिस्थानक और द्विस्थानक रूप तीन प्रकार का रस कहा है, एवं उन तीनों प्रकार के रस को जैसे सर्वघाति बताया है, उसी प्रकार उदीरणा में भी जानना चाहिये। यानि उन प्रकृतियों के चतुः, त्रि और द्विस्थानक रस को उदीरणा होती है और वह सर्वघाति ही होता है। मात्र उत्कृष्ट रस की उदी-रणा में चतुःस्थानक ही और अनुत्कृष्ट—मध्यम रस की उदीरणा में तीनों प्रकार का रस होता है।

इस प्रकार से घाति प्रकृतियों सम्बन्धी विशेष जानना चाहिये। अब एक सौ ग्यारह अघाती प्रकृतियों की उदीरणा में स्थानाश्रयी विशेष कथन करते हैं।

अघाति प्रकृतियों का स्थानाश्रित विशेष

थावरचउ आयवउरलसत्ततिरिविगलमणुयतियगाणं।
नग्गोहाइचउण्हं एगिंदिउसभाइछण्हंपि ॥४४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिमणुजोगाणं मीसगुरुयखरनर य देवपुव्वीणं ।
दुट्ठाणिओच्चिय रसो उदए उदीरणाए य ॥४५॥

शब्दार्थ—थावरचउ—स्थावरचतुष्क, **आयव**—आतप, **उरलसत्त**—औदारिकसप्तक, **तिरिविगलमणुयतियगाणं**—तिर्यंचत्रिक, विकलत्रिक, मनुष्यत्रिक, **नग्गोहाइचउण्हं**—न्यग्रोध आदि चतुष्क संस्थान, **एगिंदि**—एकेन्द्रिय जाति, **उसभाइछण्हंपि**—वज्रऋषभनाराचादि संहननषट्क ।

तिरिमणुजोगाणं—तिर्यंच और मनुष्य उदयप्रायोग्य, **मीस**—मिश्रमोहनीय, **गुरुयखर**—गुरु और कर्कश स्पर्श, **नर य देवपुव्वीणं**—नरक और देव आनुपूर्वी की, **दुट्ठाणिओच्चिय**—द्विस्थानक ही, **रसो**—रस (अनुभाग), **उदए-उद्दीरणाए य**—उदय और उदीरणा में ।

गाथार्थ—स्थावरचतुष्क, आतप, औदारिकसप्तक, तिर्यंचत्रिक, विकलत्रिक, मनुष्यत्रिक, न्यग्रोधसंस्थान आदि चतुष्क, एकेन्द्रियजाति, वज्रऋषभनाराच आदि संहननषट्क रूप तिर्यंच और मनुष्य उदयप्रायोग्य तथा मिश्रमोहनीय, गुरु, कर्कश स्पर्श, देव-नरकानुपूर्वीनाम प्रकृतियों का उदय और उदीरणा में द्विस्थानक रस ही होता है ।

विशेषार्थ—स्थावरचतुष्क—स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, आतप, औदारिकसप्तक, तिर्यंचत्रिक—तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु, विकलत्रिक—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, मनुष्यत्रिक—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, न्यग्रोधादिचतुष्क—न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, वामन, और कुब्ज संस्थान, एकेन्द्रिय जाति तथा वज्रऋषभनाराच आदि छह संहनन रूप तिर्यंच और मनुष्य के उदयप्रायोग्य बत्तीस प्रकृति तथा मिश्रमोहनीय, गुरु, कर्कश स्पर्शनाम, देव और नरक आनुपूर्वीनाम ये पाँच कुल मिलाकर सैंतीस प्रकृतियों का उदय और उदीरणा में द्विस्थानक रस ही होता है । क्योंकि ये प्रकृतियां चाहे जैसे रस वाली बंधें, लेकिन जीवस्वभाव से सत्ता में रस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम होकर उदय में आने पर उदय और उदीरणा में द्विस्थानक ही रस होता है। मात्र घातिसंज्ञाश्रित मिश्रमोहनीय का रस सर्वघाति और शेष प्रकृतियों का रस अघाति है।[1]

अब शुभाशुभत्व विषयक विशेष का निर्देश करते हैं।

शुभाशुभत्व—विषयक विशेष

सम्मत्तमीसगाणं असुभरसो सेसयाण बंधुत्तं ।
उक्कोसुदीरणा संतयंमि छट्ठाणवडिए वि ।।४६।।

शब्दार्थ—सम्मत्तमीसगाणं—सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय का **असुभरसो**—अशुभ रस **सेसयाण**—शेष प्रकृतियों का, **बंधुत्तं**—बंध के समान, **उक्कोसुदीरणा**—उत्कृष्ट उदीरणा, **संतयंमि**—सत्ता में, **छट्ठाणवडिए वि**—षट्स्थान पतित होने पर भी।

गाथार्थ—सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय का अशुभ रस है, शेष प्रकृतियों के विषय में बंध के समान है। सत्ता में—अनुभाग की सत्ता में षट्स्थानपतित होने पर भी उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय ये दोनों प्रकृति घाति होने से उनका रस अशुभ ही जानना चाहिए और इसी कारण ये दोनों प्रकृतियां रस की अपेक्षा पाप प्रकृतियाँ कहलाती हैं। शेष प्रकृतियों का शुभाशुभत्व बंध के समान जानना चाहिए। यानि बंध में जिन

१ जिन प्रकृतियों के सम्बन्ध में अमुक प्रकार के रस की उदीरणा होती है, ऐसा न कहा हो, उनके लिए बंधानुरूप समझना चाहिये। अर्थात् उन-उन प्रकृतियों का जघन्य-उत्कृष्ट जितना रस बन्ध होता हो उतना उदीरणा में भी समझना चाहिये। मात्र अघाति प्रकृतियों का अनुभाग सर्वघातिप्रतिभाग सदृश होता है। अघाति प्रकृतियों का रस है तो अघाति लेकिन सर्वघाति के साथ जब तक अनुभव किया जाता है, तब तक उसके जैसा होकर अनुभव में आता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतियों को शुभ कहा हो, उनको उदीरणा में भी शुभ और यदि अशुभ कहा हो तो अशुभ ही समझना चाहिए।

प्रश्न—किस प्रकार के रस की सत्ता में रहता जीव उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा करता है ?

उत्तर—उत्कृष्ट अनुभाग की सत्ता में षट्स्थानपतित होने पर भी उत्कृष्ट रस की उदीरणा होती है। इसका तात्पर्य यह है कि जब सर्वोत्कृष्ट रस का बंध हो तब सर्वोत्कृष्ट रस की सत्ता होती है। सत्ता में वर्तमान वह सर्वोत्कृष्ट रस अनन्तभागहीन अथवा असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन या अनन्तगुणहीन हो तो भी उत्कृष्ट रस की उदीरणा होती है। इसका कारण यह है कि अनन्तानन्त स्पर्धकों के अनुभाग का क्षय होने पर भी अनन्त स्पर्धक बंध के समय जैसे रस वाले बंधे थे, वैसे ही रस वाले रहते हैं। जितने स्पर्धक बँधें, उन समस्त स्पर्धकों में रस कम नहीं होता है, परन्तु अमुक-अमुक स्पर्धकों में से अनन्तभागहीन या अनन्तगुणहीन आदि रस कम होता है। जिससे मूल—बंधते समय जो रस बंधा था, वह सामुदायिक रस की अपेक्षा अनन्तगुणहीन अनन्तवें भाग रस शेष रहने पर भी उत्कृष्ट रस की उदीरणा होती है तो फिर असंख्यातगुणहीन आदि रस शेष रहे[1] तब भी उत्कृष्ट रस की उदीरणा हो उसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

---

१ कुल सामुदायिक रस में से अनन्तवां भाग, असंख्यातवां भाग या संख्यातवां भागरस जो कम होता है, वह अनुक्रम से अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन और संख्यातभागहीन तथा समस्त अनुभाग का अनन्तवां भाग, असंख्यातवां भाग या संख्यातवां भागही सत्ता में शेष रहे तब वह अनन्तगुणहीन, असंख्यातगुणहीन या संख्यातगुणहीन हुआ कहलाता है। अनन्तभागहीन यानि मात्र अनन्तवां भाग ही न्यून और अनन्तगुणहीन हो यानि अनन्तवां भाग शेष रहे यह अर्थ समझना चाहिये। शेष भागहीन या गुणहीन में भी ऊपर कहे अनुसार ही समझना चाहिए। ——→

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब विपाकाश्रित विशेष का कथन करते हैं।

विपाकाश्रित विशेष

मोहणीयनाणावरणं केवलियं दंसणं विरियविग्घं।
संपुन्नजीवदव्वे न पज्जवेसु कुणइ पागं ॥४७॥

शब्दार्थ – मोहणीय नाणावरणं—मोहनीय, ज्ञानावरण, **केवलियंदंसणं**—केवलदर्शनावरण, **विरियविग्घं**—वीर्यान्तराय, **संपुन्न जीवदव्वे**—सम्पूर्ण जीवद्रव्य में, **न पज्जवेसु**—पर्यायों में, **कुणइ**—करता है, **पागं**—विपाक।

गाथार्थ—मोहनीय, ज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तराय कर्म सम्पूर्ण जीवद्रव्य में विपाक करता है, परन्तु सर्व पर्यायों में विपाक नहीं करता है।

विशेषार्थ—मोहनीय की अट्ठाईस, ज्ञानावरण की पांच, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तराय ये पैंतीस प्रकृतियां सम्पूर्ण जीवद्रव्य में विपाक उत्पन्न करती हैं, परन्तु समस्त पर्यायों में उत्पन्न नहीं करती हैं। यानि ये पैंतीस प्रकृतियां द्रव्य से सम्पूर्ण जीवद्रव्य को घात करती हैं—दबाती हैं, परन्तु सम्पूर्ण पर्यायों को दबाने में अशक्य होने से आवृत नहीं करती हैं।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि उपर्युक्त प्रकृतियाँ अपने विपाक का अनुभव जीव के अमुक भाग को ही कराती हैं, अमुक भाग को नहीं, ऐसा नहीं है, परन्तु सम्पूर्ण जीवद्रव्य को कराती हैं, फिर भी उससे

समस्त सामुदायिक रस अनन्तभागादि हीन या अनन्तगुणाविहीन होता है, किन्तु सत्तागत समस्त स्पर्धकों में से अनन्तभागहीनादि रस कम होता नहीं है। कितनेक स्पर्धक जैसे बँधे थे, वैसे ही सत्ता में रह जाते हैं, जिससे उत्कृष्ट रस के सत्ताकाल में षट्स्थान पड़ने पर भी उदीरणा हो सकती है, जैसे उपशमश्रेणि में किट्टियां होने पर भी अपूर्व स्पर्धक और पूर्वस्पर्धक भी सत्ता में रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव में विद्यमान अनन्त ज्ञानादि गुण सर्वथा घातित नहीं हो जाते हैं।

उपर्युक्त प्रकृतियों में जो-जो सम्यक्त्व, चारित्र आदि गुणों को आच्छादित करती हैं, उन सबके अमुक-अमुक अंश उद्घाटित रहते ही हैं। क्योंकि समस्त अंशों को आच्छादित करने की उन कर्मों में शक्ति ही नहीं है। जीव स्वभाव से वे गुण सम्पूर्णतया आच्छादित हो भी नहीं सकते हैं। यदि पूर्ण रूप से दब जायें तो जीव अजीव हो जायेगा। जैसे सघन बादलों के रहने पर भी उनसे चन्द्र, सूर्य की प्रभा परिपूर्ण रूप से आच्छादित नहीं हो जाती है, परन्तु दिन-रात्रि का अन्तर ज्ञात हो, इतनी तो उद्घाटित रहती ही है, इसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। तथा—

गुरुलहुगाणंतपएसिएसु चक्खुस्स सेसविग्घाणं।
जोगेसु गहणधरणे ओहीणं रुविदव्वेसु ॥४८॥

शब्दार्थ—**गुरुलहुगाणंतपएसिएसु**—गुरुलघु द्रव्यों के अनन्त प्रादेशिक स्कन्धों में, **चक्खुस्स**—चक्षुदर्शनावरण का, **सेसविग्घाणं**—शेष अन्तराय कर्मों का, **जोगेसुगहणधरणे**—ग्रहण और धारण करने योग्य द्रव्यों में, **ओहीणं**—अवधिज्ञानदर्शन आवरणों का, **रुविदव्वेसु**—रूपी द्रव्यों में।

गाथार्थ—गुरु-लघु द्रव्यों के अनन्त प्रादेशिक स्कन्धों में, चक्षुदर्शनावरण का, ग्रहण-धारण करने योग्य पुद्गलों में शेष अन्तराय कर्मों का और रूपी द्रव्यों में अवधिज्ञान दर्शनावरणों का विपाक होता है।

विशेषार्थ—जिस गुण की जितने प्रमाण में जानने आदि की शक्ति होती है, उसका आवारक कर्म उतने प्रमाण में उन ज्ञानादि गुणों को आवृत्त करता है। जैसे कि अवधिज्ञान की मात्र रूपी द्रव्य को जानने की शक्ति है तो अवधिज्ञानावरण कर्म रूपी द्रव्य को जानने की शक्ति को ही आच्छादित करता है। तात्पर्य यह हुआ कि जिस गुण का जितना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और जो विषय[1] होता है, उतना और उस विषय को उसका आवरक कर्म आवृत्त करता है।

अब इसी कथन को विशेष रूप में स्पष्ट करते हैं—

गुरु-लघुपरिणामी अर्थात् आठ स्पर्श वाले अनन्त प्रादेशिक स्कन्धों का चक्षु द्वारा सामान्य ज्ञान नहीं होने देना चक्षुदर्शनावरण का विपाक है। क्योंकि चक्षुदर्शन द्वारा गुरु-लघु परिणामी अनन्त प्रदेशों से बने स्कन्ध ही जाने जा सकते हैं तथा शेष अंतराय—दान, लाभ, भोग और उपभोग अन्तराय कर्मों का ग्रहण और धारण किये जा सकें ऐसे पुद्गल द्रव्यों में ही विपाक है। क्योंकि जीव पुद्गलद्रव्य का अनन्तवां भाग ही दान में दे सकता है, लाभ प्राप्त कर सकता है या भोग-उपभोग करता किन्तु समस्त पुद्गल द्रव्यों का नहीं। दानादि गुणों का उतना ही विषय है, जिससे उसको आवृत करने वाले कर्मों का विपाक भी उतने में ही होता है।

अवधिज्ञानावरण और अवधिदर्शनावरण कर्मों का विपाक रूपी द्रव्यों में ही है—यानि वे कर्म अपनी शक्ति का अनुभव जीव को रूपी पदार्थों का सामान्य-विशेष ज्ञान नहीं होने देने में कराते हैं, अरूपी द्रव्यों में उनका विपाक नहीं है। जीवों को अरूपी द्रव्य का ज्ञान नहीं होने देने में अवधिज्ञान-दर्शनावरण कर्मों का उदय हेतु नहीं है, क्योंकि वह उनका विषय नहीं है। तात्पर्य यह कि जितने विषय में चक्षु-दर्शनादि का व्यापार है, उतने ही विषय में चक्षुदर्शनावरण आदि कर्मों का भी व्यापार है। तथा—

सेसाणं जह बंधे होइ विवागो उ पच्चओ दुविहो।
भवपरिणामकओ वा निग्गुणसगुणाण परिणइओ।।४६।।

---

१ जिस गुण से जो जाना जा सके, जिस गुण का जो कार्य हो, वह उसका विषय कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—**सेसाणं**—शेष प्रकृतियों का, **जहबंधे**—बंध में कहे अनुसार, **होइ**—होता है, **विवागो**—विपाक, **उ**—और, **पच्चओ**—**प्रत्यय**, **दुविहो**—दो प्रकार का, **भवपरिणामकओ**—भव और परिणामकृत, **वा**—तथा, **निग्गुणसगुणाण**—निर्गुण और सगुण, **परिणइओ**—परिणति से ।

गाथार्थ—शेष प्रकृतियों का विपाक बंध में कहे अनुसार उदीरणा में भी जानना चाहिए। भवकृत और परिणामकृत इस तरह प्रत्यय के दो प्रकार हैं। तथा परिणामकृत प्रत्यय निर्गुण और सगुण परिणति से दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—गाथा में शेष प्रकृतियों के विपाक सम्बन्धी विशेष का कथन करने के पश्चात् भेद निरूपणपूर्वक प्रत्ययप्ररूपणा का विचार प्रारम्भ किया है। विपाक विषयक विशेष का आशय इस प्रकार है—

पूर्वोक्त प्रकृतियों से शेष रही प्रकृतियों के विपाक-फल का अनुभव पुद्गल और भव आदि द्वारा जैसा बंध में कहा है, उसी प्रकार उदीरणा में भी समझना चाहिए। यानि कि उदीरणा से भी जीव पुद्गल और भव आदि के द्वारा उन-उन प्रकृतियों के फल को अनुभव करता है।

प्रत्ययप्ररूपणा

अब प्रत्ययों का निरूपण करते हैं—प्रत्यय, हेतु और कारण ये एकार्थक हैं। किस हेतु या कारण के माध्यम से उदीरणा होती है, उसको यहाँ बतलाते हैं। वीर्यव्यापार के बिना उदीरणा नहीं हो सकने से कषायसहित या कषायरहित योग संज्ञावाला वीर्य उसका मुख्य कारण है। इसका तात्पर्य यह हुआ—

किसी भी करण की प्रवृत्ति वीर्यव्यापार बिना नहीं हो सकती है। जिससे कषायसहित या कषायरहित जो वीर्यप्रवृत्ति, वही उदीरणा में भी कारण है। अमुक-अमुक प्रकार का वीर्यव्यापार होने में भी अनेक कारण होते हैं जैसे कि देव भव में अमुक प्रकार का और नारक, तिर्यंच, मनुष्य भव में अमुक प्रकार का वीर्य व्यापार होता है। देश या सर्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरति आदि गुणस्थान वालों के अमुक प्रकार का और गुण बिना के जीवों के अमुकप्रकार का वीर्यव्यापार होता है। वैक्रिय आहारक शरीर का परिणाम भी अमुक-अमुक प्रकृतियों की उदीरणा में कारण है। जिससे परिणाम का अर्थ जैसे अध्यवसाय होता है, उसी प्रकार यहाँ शरीर आदि का परिणाम ये अर्थ भी होता है तथा जैसा और जितना रस बँधता है, वैसा और उतना ही रस उदीरित होता है, ऐसा कुछ नहीं है। क्योंकि कितनी ही प्रकृतियों का सर्वघाती और चतुःस्थानक रस बँधता है, किन्तु वे सर्वघातिरस और चतुःस्थानक रस से ही उदय में आयें ऐसा नहीं है। बंध में चाहे जैसा रस हो लेकिन उदय-उदीरणा में अमुक प्रकार का ही रस होता है। यानि बँधे हुए रस का विपरिणाम कर, फेरफार कर, हानि-वृद्धि कर उदय में लाता है। जिससे परिणाम का अर्थ 'अन्यथाभाव करना' ऐसा भी होता है। इस प्रकार वीर्यव्यापार होने में भव आदि अनेक कारण होने से उदीरणा भी अनेक रीति से प्रवर्तित होती है। वीर्यव्यापार मुख्य कारण है, शेष सभी अवान्तर कारण हैं यह समझना चाहिए।

उदीरणा में कारण रूप योग संज्ञा वाला वीर्यविशेष भवकृत और परिणामकृत के भेद से दो प्रकार है। उसमें देव, नारक आदि पर्याय को भव और अध्यवसाय या आहारक आदि शरीर का परिणाम और बांधे गये रस का अन्यथा भाव यह परिणाम जानना चाहिये।

परिणामकृत के भी दो प्रकार हैं—१. निर्गुण परिणामकृत २. सगुण परिणामकृत। यानि निर्गुण जीवों के परिणामों द्वारा किये गये और गुणवान जीवों के परिणाम द्वारा किये गये, इस तरह परिणामकृत-प्रत्यय दो प्रकार का है।

अब जिन प्रकृतियों की उदीरणा गुण-अगुण परिणामकृत या भवकृत नहीं है, उनका निर्देश करते हैं—

उत्तरतणुपरिणामे अहिय अहोन्तावि होंति सुसरजुया।
मिउलहु　परघाउज्जोय　खगइचउरंसपत्तेया ॥५०॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—उत्तरतणुपरिणामे—उत्तर शरीर का परिणाम होने पर, **अहिय**—अधिक-विशेष, **अहोन्तावि**—नहीं होने पर भी, **होंति**—होती हैं, **सुसरजया**—सुस्वर सहित, **मिउलहु** मृदु, लघु, **परघाउज्जोय**—पराघात, उद्योत, **खगइ**—(प्रशस्त) विहायोगति, **चउरंस**—समचतुरस्रसंस्थान; **पत्तेया**—प्रत्येक नाम।

गाथार्थ—सुस्वर सहित मृदु, लघु, पराघात उद्योत (प्रशस्त) विहायोगति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रत्येक नाम रूप प्रकृतियां पहले अधिक– विशेष—आश्रयी न होने पर भी उत्तर शरीर का परिणाम हो तब अवश्य उदीरणा में प्राप्त होती हैं।

विशेषार्थ—सुस्वर सहित मृदु, लघु, स्पर्श, पराघात, उद्योत, प्रशस्त-विहायोगति, समचतुरस्रसंस्थान और प्रत्येक नाम रूप प्रकृतियाँ यद्यपि विशेष—आश्रयी पहले नहीं होतीं, तथापि जब उत्तरवैक्रिय या आहारक शरीर किया जाता है तब अवश्य उदीरणा में प्राप्त होती हैं।

तात्पर्य यह है कि अपने मूल शरीर से अन्य वैक्रिय या आहारक शरीर करने से पहले उपर्युक्त प्रकृतियों की उदीरणा अवश्य हो, यह नहीं है, इनकी विरोधिनी प्रकृतियों की भी उदीरणा या उदय होता है। क्योंकि चाहे किसी संस्थान या विहायोगति आदि के उदय वाला उत्तर शरीर कर सकता है, परन्तु जब उत्तर वैक्रिय या आहारक शरीर करे तब वह शरीर जब तक रहे तब तक उपर्युक्त प्रकृतियों की ही उदय पूर्वक उदीरणा होती है। यानि यहाँ गुण-अगुण का प्राधान्य नहीं है। परन्तु उत्तरशरीर का ही प्राधान्य है। इसीलिये उपर्युक्त प्रकृतियों की वैक्रिय या आहारक शरीर करे उस समय होने वाली उदीरणा गुणागुण-परिणामकृत या भवकृत नहीं है, परन्तु शरीरपरिणामकृत[1] है, यह समझना चाहिये। तथा—

---

१ गाथा में शरीरपरिणामकृत भेद का संकेत नहीं है। लेकिन कर्मप्रकृति उदीरणाकरण गाथा ५१ में शरीर का परिणाम उपर्युक्त प्रकृतियों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुभगाइ उच्चगोयं गुणपरिणामा उ देसमाईणं ।
अइहीणफड्डगाओ अणंतंसो नोकसायाणं ॥५१॥

शब्दार्थ—सुभगाइ—सुभगनाम आदि, **उच्चगोयं**—उच्चगोत्र, **गुणपरिणामा उ**—गुणपरिणाम से ही, **देसमाईणं**—देशविरति आदि के, **अइहीणफड्डगाओ**—अतिहीन स्पर्धक से, **अणंतंसो**—अनन्तवां भाग, **नोकसायाणं**—नोकषायों का ।

गाथार्थ—देशविरति आदि के सुभगादि और उच्च गोत्र की उदीरणा गुणपरिणाम से होती है तथा इन्हीं जीवों के नव नोकषायों का अतिहीन स्पर्धक से लेकर अनन्तवाँ भाग गुण परिणामकृत उदीरणायोग्य समझना चाहिए ।

विशेषार्थ—देशविरति और प्रमत्तसंयत आदि जीवों के सुभग आदि सुभग, आदेय और यशःकीर्ति तथा उच्चगोत्र की अनुभाग-उदीरणा गुण परिणाम कृत-देश विरति आदि विशिष्ट गुण की प्राप्ति द्वारा हुए परिणामकृत हैं यह समझना चाहिए । जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

कोई जीव सुभग आदि की प्रतिपक्षी दुर्भग आदि प्रकृतियों के उदय से युक्त होने पर भी जब देशविरति या सर्वविरति गुण को प्राप्त करता है, तब उस देशविरति आदि गुण के प्रभाव से उस गुणसम्पन्न जीव को सुभगादि प्रकृतियों की उदयपूर्वक उदीरणा प्रवर्तित होती है। यानि दुर्भगादि का उदय बदलकर सुभगादि का ही उदय होता है ।

उदीरणा में कारणभूत होने से परिणामकृत उदीरणा में उसका समावेश किया है । उसमें आहारकशरीर का परिणाम गुणवान आत्माओं को ही होने से उसकी उदीरणा का समावेश गुणपरिणामकृत में और वैक्रिय शरीर का परिणाम गुणी, निर्गुणी दोनों के होने से उसकी उदीरणा का समावेश सगुण-निर्गुण परिणामकृत दोनों में हो सकता है, इसीलिए यहाँ परिणाम का शरीरपरिणाम भी अर्थ किया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीवेद आदि नव नोकषायों का अति जघन्य अनुभागस्पर्धक से लेकर अनुक्रम से (कुल स्पर्धक का) अनन्तवाँ भाग[1] देशविरति-सर्व-विरत जीवों को गुणपरिणामकृत उदीरणायोग्य समझना चाहिए।[2] तथा—

जा जंमि भवे नियमा उदीरए ताउ भवनिमित्ताओ।
परिणामपच्चयाओ सेसाओ सइ स सव्वत्थ ॥५२॥

शब्दार्थ—जा जंमि भवे—जिन प्रकृतियों की जिस भव में, **नियमा**—नियम से, **उदीरए**—उदीरणा होती है, **ताउ**—वे, **भवनिमित्ताओ**—भव निमित्तक, **परिणामपच्चयाओ**—परिणाम प्रत्ययिक, **सेसाओ**—शेष, **सइ**—होतीं है, **स**—वह, **सव्वत्थ**—सर्वत्र।

गाथार्थ—जिन प्रकृतियों की जिस भव में अवश्य उदीरणा होती है, वे भवनिमित्तक और शेष परिणामप्रत्ययिक कहलाती हैं। क्योंकि उनकी उदीरणा सर्वत्र होती है।

विशेषार्थ—जिन-जिन कर्म प्रकृतियों की जिस-जिस भव में अवश्य उदीरणा होती है, वे प्रकृतियां उस-उस भव के कारण होने से तद्‌भव प्रत्ययिक कहलाती हैं। अर्थात् उन-उन प्रकृतियों की उदीरणा में वह-वह भव कारण है। जैसे कि नरकत्रिक की उदीरणा नारकभवनिमि-

---

१ जघन्य स्पर्धक से लेकर समस्त स्पर्धकों का अनन्तवाँ भाग वेद आदि प्रकृतियों का देशविरत आदि जीवों के उदीरणायोग्य कहा है। यानि जघन्य रसस्पर्धक से लेकर अनन्त स्पर्धक द्वारा जैसा परिणाम हो वैसा वेदादि का उदय देशविरतादि को समझना चाहिये। क्योंकि गुण के प्रभाव से उस-उस पापप्रकृति का उदय मन्द-मन्द होने से यह सम्भव है।

२ कर्मप्रकृति उदीरणाकरण गाथा ५२ में इन प्रकृतियों का असंख्यातवाँ भाग गुणपरिणामकृत उदीरणायोग्य बताया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक होती है, देवत्रिक की उदीरणा में देवभव कारण है, तिर्यंचत्रिक, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियजातित्रिक, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और आतप नामकर्म की उदीरणा तिर्यंचभव प्रत्यधिक है और मनुष्यत्रिक की उदीरणा में मनुष्यभव हेतु है।

उक्त बीस प्रकृतियों की उदीरणा उस-उस भव में ही होने से भव-प्रत्ययिक कहलाती है।

शेष प्रकृतियों की उदीरणा में कोई निश्चित भव प्रतिबंधक नहीं होने से परिणामप्रत्ययिक कहलाती हैं। जिसका आशय यह है कि उक्त बीस प्रकृतियों के सिवाय शेष प्रकृतियों की उदीरणा परिणाम-प्रत्ययिक और ध्रुव है। क्योंकि सर्वभावों में और सर्वभवों में विद्यमान उदीरणा ध्रुवोदया प्रकृतियों की होती है। इसलिए परिणाम-निमित्त से जिनकी उदीरणा होने वाली है, ऐसी शेष प्रकृतियां ध्रुवोदया ही समझना चाहिए और उनकी उदीरणा निर्गुणपरिणामकृत समझना चाहिए। तथा—

तित्थयरं घाईणि य आसज्ज गुणं पहाणभावेण ।
भवपच्चइया सव्वा तहेव परिणामपच्चइया ॥५३॥

शब्दार्थ—**तित्थयरं**—तीर्थंकर, **घाईणि**—घाति प्रकृतियां, **य**—और, **आसज्ज**—आधार से, **गुणं**—गुण के, **पहाणभावेण**—प्रधानतया, मुख्यरूप से, **भवपच्चइया**—भवप्रत्ययिक, **सव्वा**—सभी, **तहेव**—उसी तरह, **परिणामपच्चइया**—परिणाम प्रत्ययिक।

गाथार्थ—तीर्थंकर और घाति प्रकृतियां गुण के आधार से प्रधानतया गुणपरिणामप्रत्ययिक जानना चाहिए अथवा उसी तरह सभी प्रकृतियां भवप्रत्ययिक एवं परिणामप्रत्ययिक भी कहलाती हैं।

विशेषार्थ—तीर्थंकरनाम, घाति प्रकृति, ज्ञानावरणपंचक, दर्शना-वरणनवक, नोकषाय बिना शेष मोहनीय और अन्तरायपंचक तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च शब्द से संकलित वैक्रियसप्तक तथा ध्रुवोदया प्रकृतियां अन्यथा बंधी हुई ये सभी प्रकृतियां गुण के अवलम्बन से अन्यथा परिणमित होकर[1] उदीरित होती हैं। इसलिए उनकी उदीरणा मुख्यरूप से गुण-परिणामकृत समझना चाहिये। अथवा सभी प्रकृतियां यथायोग्य रीति से किसी न किसी भव में उदीरित की जाती हैं। जैसे तिर्यंचगति-प्रायोग्य तिर्यंचगति में, मनुष्यगतिप्रायोग्य मनुष्यगति में, नरकगति-प्रायोग्य नरकगति में और देवगतिप्रायोग्य देवभव में। इसलिए सभी प्रकृतियों की उदीरणा भवप्रत्ययिक जानना चाहिए। अथवा उस-उस प्रकार के परिणाम के वश से अधिक रस वाली प्रकृतियों को अल्प रस वाली करके और अल्प रस वाली हों तो उन्हें अधिक रस वाली करके सभी जीव उदीरित करते हैं। इसीलिये सभी प्रकृतियों परिणाम प्रत्यरिक जानना चाहिए।

इस प्रकार से प्रत्ययप्ररूपणा का आशय जानना चाहिए। अब साद्यादि प्ररूपणा करने का अवसर प्राप्त है। वह मूलप्रकृतिविषयक और उत्तरप्रकृतिविषयक के भेद से दो प्रकार की है। उसमें पहले मूल-प्रकृतिविषयक साद्यादि प्ररूपणा करते हैं।

मूलप्रकृति-सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा

वेयणिएणुक्कोसा अजहण्णा मोहणीय चउभेया।
सेसघाईणं तिविहा नामगोयाणणुक्कोसा ॥५४॥
सेसविगप्पा दुविहा सव्वे आउस्स होउमुवसन्तो।
सव्वट्ठगओ साए उक्कोसुद्दीरणं कुणइ ॥५५॥

शब्दार्थ—**वेयणिएणुक्कोसा**—वेदनीय कर्म की अनुत्कृष्ट उदीरणा,

---

१ यहाँ अन्य प्रकृति में संक्रमरूप अन्यथा परिणाम नहीं समझना चाहिये। किन्तु रस की उदीरणा का अधिकार होने से जिस प्रकृति में जैसा रस बांधा हो, उसमें फेरफार करने रूप अन्यथा परिणमन जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजहण्णा—अजघन्य, **मोहणीय**—मोहनीय की, **चउभेया**—चार प्रकार की हैं। **सेसघाईणं**—शेष घाति प्रकृतियों की, **तिविहा**—तीन प्रकार की, **नामगोयाणुक्कोसा**—नाम और गोत्र की अनुत्कृष्ट।

सेसविगप्पा—शेष विकल्प, **दुविहा**—दो प्रकार के, **सव्वे**—सभी, **आउस्स**—आयुकर्म के, **होउं**—होकर, **उवसन्तो**—उपशांत, **सव्वट्ठगओ**—सर्वार्थसिद्ध में गया हुआ, **साए**—सातावेदनीय की, **उक्कोसुद्दीरणं**—उत्कृष्ट उदीरण, **कुणइ**—करता है।

गाथार्थ—वेदनीयकर्म की अनुत्कृष्ट और मोहनीय की अजघन्य उदीरणा चार प्रकार की है। शेष घाति कर्मों की तीन प्रकार की है। नाम और गोत्र कर्म की अनुत्कृष्ट उदीरणा भी तीन प्रकार की है।

उक्त से शेष विकल्प दो प्रकार के हैं। आयुकर्म के सभी विकल्प दो प्रकार के हैं। उपशांत होकर सर्वार्थसिद्ध में गया जीव सातावेदनीय की उत्कृष्ट उदीरणा करता है।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में मूल कर्म प्रकृतियों की सादि आदि प्ररूपणा की है और उसका प्रारम्भ किया है वेदनीय कर्म से—

वेदनीय कर्म की अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस तरह—

उपशमश्रेणि में सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में यथायोग्य रूप से उत्कृष्ट रस वाला साता वेदनीय का बंध करे और वहाँ से कालधर्म प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध महाविमान में उत्पन्न हो, तब पहले समय में उसको जो उदीरणा होती है, वह उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा है और वह नियत कालपर्यन्त ही होने से सादि-सांत है। उसके सिवाय अन्य सभी अनुत्कृष्ट उदीरणा है। वह अप्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानों में नहीं होती है, किन्तु वहाँ से पतन हो तब होती है। इसीलिये सादि है, उस स्थान को जिसने प्राप्त नहीं किया उसकी अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव उदीरणा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय की अजघन्य अनुभाग-उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस प्रकार—मोहनीय-कर्म की जघन्य अनुभाग-उदीरणा क्षपकश्रेणि में सूक्ष्मसंपरायगुण-स्थानवर्ती जीव के समयाधिक आवलिका शेष स्थिति रहे तब होती है और उसको एक समय पर्यन्त ही होने से सादि-सांत है। शेष काल में अजघन्य अनुभाग-उदीरणा प्रवर्तित होती है। वह उपशांतमोहगुण-स्थान में नहीं होती है, किन्तु वहाँ से गिरने पर होती है, इसलिये सादि है। उस स्थान को प्राप्त नहीं करने वाले के अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है।

शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय कर्म रूप घाति कर्मों की अजघन्य अनुभाग-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। वह इस प्रकार—इन कर्मप्रकृतियों की क्षीणमोहगुण-स्थान में समयाधिक आवलिका शेष रहे तब जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है और वह एक समय-पर्यन्त होने से सादि-सांत है। उसके सिवाय अन्य सभी अजघन्य अनुभाग-उदीरणा है। उसे अनादि काल से प्रवर्तित होने से अनादि है तथा अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव जानना चाहिये।

नाम और गोत्र कर्म की अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। वह इस प्रकार—इन दोनों कर्मों की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा सयोगिकेवलीगुणस्थान में होती है और वह नियत काल पर्यन्त प्रवर्तित होने से सादि-सांत है। उसके अतिरिक्त अन्य सभी अनादि है। इस गुणस्थान को प्राप्त होने से पूर्व अनादिकाल से होती रहने से अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा अनादि है। अभव्य के ध्रुव और भव्य जब चौदहवां गुणस्थान प्राप्त करेगा तब अनुत्कृष्ट उदीरणा का अन्त करेगा, अतएव उसकी अपेक्षा अध्रुव-सांत है।

जिस-जिस कर्म से सम्बन्धित जो-जो विकल्प कहे हैं, उनके सिवाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य विकल्प सादि और अध्रुव—सांत इस तरह दो प्रकार के हैं। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—घातिकर्म की उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा मिथ्यादृष्टि के एक के बाद दूसरी इस क्रम से प्रवर्तित होने से सादि है। उक्त कर्मों का उत्कृष्ट रसबंध पहले गुणस्थान में होता है, जिससे जब तक उत्कृष्ट रस सत्ता में हो, तब तक उनकी उत्कृष्ट तत्पश्चात् अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा प्रवर्तमान होती है तथा जब उत्कृष्ट रस का बंध हो तब उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा होती है। इस प्रकार के परावर्तन क्रम से होने के कारण सादि-सांत है और जघन्य उदीरणा विषयक विचार अजघन्य-उदीरणा के प्रसंग में किया जा चुका है।

नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म की जघन्य, अजघन्य अनुभाग-उदीरणा मिथ्यादृष्टि के एक के बाद एक इस तरह बदल-बदल कर होने से दोनों सादि सांत हैं। इन कर्मों के जघन्य अनुभाग का बंध निगोदिया जीव के होता है, अतः उक्त प्रकार से जघन्य-अजघन्य सादि-सांत हैं। उत्कृष्ट उदीरणा के सम्बन्ध में पहले विचार किया जा चुका है।

आयुकर्म के जघन्य आदि चारों भेद उसके अध्रुव होने से सादि और सांत—अध्रुव इस तरह दो प्रकार के हैं। क्योंकि पर्यन्तावलिका में किसी भी आयु की उदीरणा नहीं होती है। पर्यन्तावलिका से पूर्व तक ही होती है।

इस प्रकार से मूलकर्म सम्बन्धी सादि आदि विकल्पों को जानना चाहिये। अब उत्तरप्रकृतिविषयक साद्यादि प्ररूपणा करते हैं।

उत्तरप्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा

कक्खडगुरुमिच्छाणं अजहण्णा मिउलहूणणुक्कोसा।
चउहा साइयवज्जा वीसाए धुवोदयसुभाणं ॥५६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—कक्खडगुरुमिच्छाणं—कर्कश, गुरु स्पर्श और मिथ्यात्व की, **अजहण्णा**—अजघन्य, **मिउलहुणणुक्कोसा**—मृदु, लघु स्पर्श की अनुत्कृष्ट, **चउहा**—चार प्रकार की, **साइयवज्जा**—सादि को छोड़कर, **वीसाए**—बीस, **धुवोदयसुभाणं**—ध्रुवोदया शुभ प्रकृतियों की।

> **गाथार्थ**—कर्कश, गुरु स्पर्श और मिथ्यात्व की अजघन्य तथा मृदु, लघु स्पर्श की अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा चार प्रकार की है तथा शुभ ध्रुवोदया बीस प्रकृतियों की अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा सादि को छोड़कर तीन प्रकार की है।

विशेषार्थ—कर्कश, गुरु स्पर्श और मिथ्यात्वमोहनीय की अजघन्य अनुभाग-उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस प्रकार—सम्यक्त्व और संयम एक साथ—एक ही समय में प्राप्त करने के इच्छुक—उन्मुख किसी मिथ्यादृष्टि जीव के उत्कृष्ट विशुद्धि के कारण मिथ्यात्वमोहनीय की जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है। नियत काल पर्यन्त होने से वह सादि-सांत है। उसके सिवाय अन्य मिथ्यादृष्टि से उसकी अजघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है। सम्यक्त्व से गिरते अजघन्य अनुभाग-उदीरणा प्रारम्भ होती है, अतएव सादि, उस स्थान को प्राप्त नहीं करने वाले के अनादि, अभव्य को ध्रुव और भव्य के अध्रुव है।

कर्कश और गुरु स्पर्श की जघन्य अनुभाग-उदीरणा केवलिसमुद्‌घात से निवृत्त होते केवलि के छठे समय में जीवस्वभाव से होती है। समय मात्र प्रमाण होने से वह सादि-सांत है। उसके सिवाय अन्य समस्त अजघन्य है और वह केवलिसमुद्‌घात से निवृत्त होते सातवें समय में होती है, इसलिये सादि है। उस स्थान को प्राप्त नहीं करने वाले की अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव तथा भव्य की अपेक्षा अध्रुव है। तथा—

मृदु, लघु स्पर्श की अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस प्रकार—इन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा आहारक शरीरस्थ संयत के होती है। जो अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त ही प्रवर्तित होने से सादि-सांत है। उसके अतिरिक्त शेष सब अनुभाग उदीरणा अनुत्कृष्ट है और वह आहारकशरीर का उपसंहार होते समय होती है, अतः सादि है। उस स्थान को जिसने प्राप्त नहीं किया उसकी अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव तथा भव्य के अध्रुव है।

तैजस्‌सप्तक, स्थिर, शुभ, निर्माण, अगुरुलघु, श्वेत, पीत, रक्त वर्ण, सुरभिगंध, मधुर, आम्ल, कषाय रस, उष्ण, स्निग्ध स्पर्श रूप शुभ ध्रुवोदया बीस प्रकृतियों की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है और वह इस प्रकार— इन प्रकृतियों के उत्कृष्ट रस की उदीरणा सयोगिकेवली के चरम समय में होती है, जिससे वह सादि-सांत है। उसके सिवाय अन्य शेष सब अनुत्कृष्ट है। उसके सर्वदा होते रहने से अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है। तथा—

अजहण्णा असुभधुवोदयाण तिविहा भवे तिवीसाए।
साईअधुवा सेसा सव्वे अधुवोदयाणं तु ॥५७॥

शब्दार्थ—**अजहण्णा**—अजघन्य, **असुभधुवोदयाण**—अशुभ ध्रुवोदया प्रकृतियों की, **तिविहा**—तीन प्रकार की, **भवे**—होती है, **तिवीसाए**—तेईस, **साइअधुवा**—सादि और अध्रुव, **सेसा**—शेष की, **सव्वे**—सब, **अधुवोदयाणं**—अध्रुवोदया प्रकृतियों की, **तु**—और।

गाथार्थ—अशुभ ध्रुवोदया तेईस प्रकृतियों की अजघन्य अनुभाग-उदीरणा तीन प्रकार की है। शेष विकल्प तथा अध्रुवोदया प्रकृतियों के समस्त विकल्प सादि अध्रुव हैं।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणपंचक, दर्शनावरणचतुष्क, कृष्ण, नील वर्ण, दुरभिगंध, तिक्त, कटुक रस, रूक्ष, शीत स्पर्श, अस्थिर, अशुभ और अंत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रायपंचक रूप अशुभ ध्रुवोदया तेईस प्रकृतियों की अजघन्य अनुभाग-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

उपर्युक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा उन-उन प्रकृतियों के उदीरणा-विच्छेद-स्थान में होती है और वह सादि—अध्रुव है। उसके सिवाय शेष अन्य सब अजघन्य है और उसके सर्वदा प्रवर्तित होते रहने से वह अनादि, अभव्य के ध्रुव तथा भव्य के अध्रुव होती है।

उपर्युक्त सभी प्रकृतियों के उक्त से शेष विकल्प सादि-अध्रुव हैं। किस प्रकृति के कौन विकल्प उक्त से शेष हैं ? तो वह इस प्रकार जानना चाहिए—कर्कश, गुरु, मिथ्यात्व और अशुभ ध्रुवोदया तेईस प्रकृतियों के उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य ये तीन विकल्प तथा मृदु, लघु और शुभ ध्रुवोदया बीस प्रकृतियों के जघन्य, अजघन्य और उत्कृष्ट ये तीन विकल्प शेष हैं। जिनमें सादि—अध्रुव भंगों का विचार इस प्रकार है—

कर्कश, गुरु, मिथ्यात्व और अशुभ ध्रुवोदया तेईस प्रकृतियों के उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा मिथ्यादृष्टियों के एक के बाद दूसरी इस प्रकार के परावर्तमान क्रम से होती है। क्योंकि ये सभी पाप प्रकृतियां हैं और उनका उत्कृष्ट अनुभागबंध मिथ्यादृष्टियों के होता है। अतएव ये दोनों भंग सादि-अध्रुव-सांत हैं। जघन्य का विचार अजघन्य भंग के प्रसंग में किया जा चुका है तथा मृदु, लघु स्पर्श एवं ध्रुवोदया बीस प्रकृतियों के जघन्य-अजघन्य अनुभाग की उदीरणा मिथ्यात्वियों के एक के बाद एक के क्रम से होती है। क्योंकि ये पुण्य प्रकृतियां हैं और क्लिष्ट परिणाम के योग से उनका जघन्य रसबंध होता है। अतः वे दोनों सादि-सांत हैं। अनुत्कृष्ट के प्रसंग में उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा का विचार किया जा चुका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष अध्रुवोदया एक सौ दस प्रकृतियों के उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये सभी विकल्प उन प्रकृतियों के अध्रुवोदया होने से सादि-सांत हैं। उदय हो तब उत्कृष्ट आदि कोई भी उदीरणा होती है और उदय के निवृत्त होने पर नहीं होती है।

इस प्रकार से मूल और उत्तर प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा जानना चाहिये। अब क्रमप्राप्त स्वामित्व प्ररूपणा करते हैं। वह उत्कृष्ट उदीरणास्वामित्व और जघन्य उदीरणास्वामित्व के भेद से दो प्रकार की है। उसमें से प्रथम उत्कृष्ट उदीरणास्वामित्व का निर्देश करते हैं।

उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणास्वामित्व

दाणाइअचक्खूणं उक्कोसाइंमि हीणलद्धिस्स।
सुहुमस्स चक्खुणो पुण तेइंदिय सव्वपज्जत्ते ॥५८॥

शब्दार्थ—दाणाइ—दान आदि अन्तरायपंचक, **अचक्खूणं**—अचक्षुदर्शनावरण की, **उक्कोसाइंमि**—उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा भव के आदि में, **हीणलद्धिस्स**—हीन लब्धि वाले, **सुहुमस्स**—सूक्ष्म एकेन्द्रिय के, **चक्खुणो**—चक्षुदर्शनावरण की, **पुण**—पुनः और, **तेइंदिय**—त्रीन्द्रिय के, **सव्वपज्जत्ते**—सर्वपर्याप्तियों से पर्याप्त।

गाथार्थ—दानादि अन्तरायपंचक और अचक्षुदर्शनावरण के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा हीन लब्धि वाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय को भव के आदि समय में तथा चक्षुदर्शनावरण की (स्वयोग्य) सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त त्रीन्द्रिय के होती है।

विशेषार्थ—दानान्तराय आदि पांच अन्तराय और अचक्षुदर्शनावरण इन छह प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा अत्यन्त अल्प दानादि लब्धि वाले और चक्षु के सिवाय शेष इन्द्रियों के विज्ञान की अत्यन्त अल्प लब्धि वाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय को उत्पत्ति के प्रथम समय में होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका कारण यह मालूम होता है कि शुरुआत में वे दानादि गुण अत्यन्त आवृत होते हैं और कर्मों का उदय तीव्र प्रमाण में होता है जिससे उदीरणा भी उत्कृष्ट होती है। इन प्रकृतियों का प्रत्येक जीव को क्षयोपशम होता है और वह भी भव के प्रथम समय से जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अधिक-अधिक होता है और जैसे-जैसे योग बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे क्षयोपशम भी बढ़ता है तथा उससे उदीरणा का प्राबल्य घटता जाता है। तथा—

समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त त्रीन्द्रिय जीव के पर्याप्ति के चरम समय में चक्षुदर्शनावरणकर्म के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा होती है। इसीलिए त्रीन्द्रिय जीव चक्षुदर्शनावरण के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है। इसका कारण यह है प्रत्येक अपर्याप्त अपर्याप्तावस्था में उत्तरोत्तर समय में असंख्यातगुण योग वृद्धि से बढ़ता है। अपर्याप्तावस्था के अन्तिम समय में योग अधिक होने से अधिक अनुभाग की उदीरणा हो सकती है। एकेन्द्रियादि को इतना योग नहीं होने से उनको अधिक अनुभाग की उदीरणा नहीं होती है, इसीलिये उनका ग्रहण नहीं किया है और चतुरिन्द्रियादि के तो चक्षुरिन्द्रियावरण का क्षयोपशम ही होता है। तथा—

निद्दाणं पंचण्हवि मज्झिमपरिणामसंकिलिट्ठस्स ।
पणनोकसायसाए नरए जेट्ठट्ठिति समत्तो ॥५६॥

शब्दार्थ—**निद्दाणं पंचण्हवि**—पांचों निद्राओं की, **मज्झिमपरिणामसंकिलिट्ठस्स**—मध्यम परिणामी संक्लिष्ट जीव के, **पणनोकसायसाए**—पांच नोकषायों और असातावेदनीय की, **नरए**—नारक के, **जेट्ठट्ठिति**—उत्कृष्ट स्थिति वाले, **समत्तो** – पर्याप्त को।

गाथार्थ—मध्यमपरिणामी तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट जीव के पाँचों निद्राओं की तथा उत्कृष्ट स्थिति वाले पर्याप्त नारक के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांच नोकषाय और असातावेदनीय की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त मध्यमपरिणाम वाले एवं तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त जीव के निद्रा आदि पाँचों निद्राओं की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा होती है। क्योंकि अत्यन्त विशुद्ध और अत्यन्त संक्लिष्ट परिणाम वाले के किसी भी निद्रा का उदय ही नहीं होता है, इसीलिये मध्यमपरिणाम वाले का ग्रहण किया है और अपर्याप्तावस्था में भी तीव्र निद्रा का उदय नहीं होने से पर्याप्तावस्था ग्रहण की है। तथा—

नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन पांच नोकषायों और असातावेदनीय की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा का स्वामी उत्कृष्ट आयु वाला और समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त नारक जानना चाहिए। उत्कृष्ट आयु वाले सातवें नरक के पर्याप्त नारक के इन पाँच प्रकृतियों के उत्कृष्ट रस की उदीरणा सम्भव है। क्योंकि अत्यन्त पाप करने पर सातवीं नरक पृथ्वी प्राप्त होती है तथा अपर्याप्त से पर्याप्तावस्था में योग अधिक होने से पर्याप्त का ग्रहण किया है। तथा—

पंचेन्द्रियतसबायरपज्जत्तगसायसुस्सरगईणं।
वेउव्वुस्सासस्स य देवो जेट्ठट्ठिति समत्तो ॥६०॥

शब्दार्थ—**पंचेन्दिय**—पंचेन्द्रियजाति, **तसबायरपज्जत्तग**—त्रस, बादर, पर्याप्त. **सायसुस्सरगईणं**—सातावेदनीय, सुस्वर, देवगति की, **वेउव्वुस्सासस्स**—वैक्रिय (सप्तक), उच्छ्वासनाम की, **य**—और, **देवो**—देव, **जेट्ठट्ठिति**—उत्कृष्ट स्थिति वाला, **समत्तो**—सम्पूर्ण पर्याप्ति वाला—पर्याप्त।

गाथार्थ—पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सातावेदनीय, सुस्वर, देवगति, वैक्रियसप्तक और उच्छ्वासनाम की उत्कृष्ट स्थिति वाला पर्याप्त देव उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा का स्वामी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ— पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सातावेदनीय[1] सुस्वरनाम, देवगति, वैक्रियसप्तक और उच्छ्वासनाम इन पन्द्रह प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त, उत्कृष्टस्थिति वाला (तेतीस सागरोपम की आयु वाला) और सर्व विशुद्ध परिणामी देव करता है। क्योंकि ये सभी पुण्यप्रकृतियां हैं, जिससे उनके उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा पुण्य के तीव्र प्रकर्ष वाला अनुत्तरवासी देव ही करता है। तथा—

सम्मत्तमीसगाणं से काले गहिहिइत्ति मिच्छत्तं ।
हासरईणं पज्जत्तगस्स सहसारदेवस्स ॥६१॥

शब्दार्थ—**सम्मत्तमीसगाणं**—सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय की, **से काले**—तत्काल बाद के समय में, **गहिहिइत्ति**—प्राप्त करेगा, **मिच्छत्तं**—मिथ्यात्व को, **हासरईणं**—हास्य और रति की, **पज्जत्तगस्स**—पर्याप्त के, **सहसारदेवस्स**—सहस्रार कल्प के देव के।

गाथार्थ—जो जीव बाद के समय में मिथ्यात्व प्राप्त करेगा, उसे सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय की तथा पर्याप्त सहस्रारकल्प के देव के हास्य और रति की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—तत्काल— बाद के समय में ही मिथ्यात्व प्राप्त करने वाले सर्वसंक्लिष्टपरिणामी सम्यक्त्वमोहनीय के उदय वाले को सम्यक्त्वमोहनीय की और मिश्रमोहनीय के उदय वाले को मिश्रमोहनीय के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा होती है। इसका कारण यह है कि मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाला जीव तीव्र संक्लेश वाला होता है,

---

१ उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट आदि भंगों के प्रसंग में सातावेदनीय के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा सर्वार्थसिद्ध महाविमान में उत्पन्न हो, तब प्रथम समय में कही है और यहां पर्याप्त अवस्था में बताई है। विद्वान स्पष्ट करने की कृपा करें।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जिससे सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा के बाद जिस समय में मिथ्यात्व में जाये, उस समय संभव है तथा समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त सहस्रारदेव के हास्य, रति की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा होती है। तथा—

गइहुण्डुवघायाणिट्ठखगतिदुसराइणीयगोयाणं ।
नेरइओ जेट्ठट्ठिइ मणुआ अंते अपज्जस्स ॥६२॥

शब्दार्थ – **गइ**—(नरक) गति, **हुंडुवघायाणिट्ठखगति**—हुंडसंस्थान, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, **दुसराइ**—दुःस्वर आदि, **णीयगोयाणं**—नीचगोत्र के, **नेरइओ**—नारक, **जेट्ठट्ठिइ**—उत्कृष्ट स्थिति वाला, **मणुआ**—मनुष्य, **अंते**—अंत में, **अपज्जस्स**—अपर्याप्त नाम की ।

गाथार्थ – नरकगति, हुण्डसंस्थान, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, दुःस्वरादि और नीचगोत्र के उत्कृष्ट अनुभाग का उदीरक उत्कृष्ट स्थिति वाला नारक है तथा अपर्याप्त नाम के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा अंत में मनुष्य करता है ।

विशेषार्थ—नरकगति, हुण्डसंस्थान, उपघात नाम, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्तिनाम और नीचगोत्र इन नौ प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा उत्कृष्ट आयु वाला और समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त अति संक्लिष्ट परिणामी नारक करता है। क्योंकि ये सभी पापप्रकृतियां हैं, जिससे इनके उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा के योग्य अति संक्लिष्टपरिणामी सातवीं नरकपृथ्वी का नारक जीव ही सम्भव है। उसके ही ऐसा तीव्र संक्लेश हो सकता है कि जिसके कारण उक्त प्रकृतियों की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा हो।

अपर्याप्तनाम के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी अपर्याप्तावस्था के चरम समय में वर्तमान अपर्याप्त मनुष्य है। तथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कक्खडगुरुसंघयणा थीपुमसंट्ठाणतिरिगईणं च ।
पंचिंदिओ तिरिक्खो अट्ठमवासेट्ठवासाऊ ॥६३॥

शब्दार्थ—कक्खडगुरुसंघयणा—कर्कश, गुरु स्पर्श, पांच संहनन, **थीपुमसंट्ठाणतिरिगईणं**—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, (चार) संस्थान, तिर्यंचगति के, **च**—और, **पंचिंदिओ**—पंचेन्द्रिय, **तिरिक्खो**—तिर्यंच, **अट्ठमवासेट्ठवासाऊ**—आठवें वर्ष में वर्तमान और आठ वर्ष की आयु वाला।

गाथार्थ—कर्कश, गुरु स्पर्श, पांच संहनन, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार संस्थान और तिर्यंचगतिनाम के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी आठवें वर्ष में वर्तमान आठ वर्ष की आयु वाला तिर्यंच है।

विशेषार्थ—कर्कश और गुरु स्पर्श, पहले के सिवाय शेष पांच संहनन, स्त्री और पुरुषवेद, आदि और अंत को छोड़कर शेष मध्य के चार संस्थान एवं तिर्यंचगतिनाम, इन चौदह प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी आठ वर्ष की आयु वाला और आठवें वर्ष में वर्तमान संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच है। तथा—

तिगपलियाउ समत्तो मणुओ मणुयगतिउसभउरलाणं ।
पज्जत्ता चउगइया उक्कोस सगाउयाणं तु ॥६४॥

शब्दार्थ—तिगपलियाउ—तीन पल्योपम की आयु वाला, **समत्तो**—पर्याप्त, **मणुओ**—मनुष्य, **मणुयगतिउसभउरलाणं**—मनुष्यगति, वज्रऋषभनाराचसंहनन, औदारिकसप्तक के, **पज्जत्ता**—पर्याप्त, **चउगइया**—चतुर्गति के जीव, **उक्कोस**—उत्कृष्ट, **सगाउयाणं**—अपनी आयु की, **तु**—और।

गाथार्थ—तीन पल्योपम की आयु वाला पर्याप्त मनुष्य मनुष्यगति, वज्रऋषभनाराचसंहनन, औदारिकसप्तक के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है तथा चारों गति के पर्याप्त अपनी-अपनी आयु की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—तीन पल्योपम की आयु वाला, समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त और सर्वविशुद्ध परिणाम वाला मनुष्य मनुष्यगति, वज्रऋषभनाराचसंहनन और औदारिकसप्तक के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा करता है तथा अपनी-अपनी आयु की उत्कृष्ट स्थिति में वर्तमान अर्थात् उत्कृष्ट स्थिति वाले चारों गति के पर्याप्त जीव अपनी-अपनी आयु की उत्कृष्ट उदीरणा करते हैं। किन्तु इतना विशेष समझना चाहिए कि नरक के अतिरिक्त तीन आयु की सर्वविशुद्ध परिणाम वाले और नरकायु की सर्वसंक्लिष्टपरिणामी नारक अपनी-अपनी आयु की उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा के स्वामी हैं। तथा—

हस्सटि्ठई पज्जत्ता तन्नामा विगलजाइसुहुमाणं।
थावरनिगोयएगिंदियाणमिह बायरा नवरं ॥६५॥

शब्दार्थ—**हस्सटि्ठई**—जघन्य स्थिति वाले, **पज्जत्ता**—पर्याप्त, **तन्नामा**—उस-उस नाम वाले, **विगलजाइसुहुमाणं**—विकलेन्द्रियजाति, सूक्ष्म की, **थावरनिगोयएगिंदियाणं**—स्थावर, निगोद (साधारण) एकेन्द्रिय की, **इह**—यहाँ, **बायरा**—बादर, **नवरं**—किन्तु।

गाथार्थ—विकलेन्द्रियजाति, सूक्ष्म, स्थावर, साधारण और एकेन्द्रियजाति की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा जघन्य आयु वाले पर्याप्त उस-उस नाम वाले जीव करते हैं। परन्तु यहाँ स्थावर, साधारण और एकेन्द्रियजाति नाम के मात्र बादर जानना चाहिए।

विशेषार्थ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, जाति और सूक्ष्मनामकर्म के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा जघन्य आयु वाले, समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त और अत्यन्त संक्लिष्ट परिणामी उस-उस नाम वाले यानि कि द्वीन्द्रियजाति के द्वीन्द्रियकी, त्रीन्द्रियजाति के त्रीन्द्रियकी चतुरिन्द्रियजाति के चतुरिन्द्रियकी और सूक्ष्म नाम की सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव करते हैं। क्योंकि अल्प आयु वाला उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम वाला होता है और उत्कृष्ट संक्लेश में पाप प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा होती है, इसीलिये यहाँ अल्प आयु वाले का ग्रहण किया है। तथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य आयु वाले समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त, तीव्र संक्लेश-परिणामी बादर एकेन्द्रिय जीव स्थावरनाम, साधारणनाम, और एकेन्द्रिय जातिनामकर्म के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा करते हैं। उसमें से स्थावरनाम की स्थावर, साधारणनाम की बादर साधारण एकेन्द्रिय और एकेन्द्रियजातिनाम की दोनों उदीरणा करते हैं। सूक्ष्म की अपेक्षा बादर को संक्लेश अधिक होता है, इसलिए बादर का ग्रहण किया है। तथा —

आहारतणूपज्जत्तगो उ चउरंसमउयलहुयाणं।
पत्तेयखगइपरघायतइयमुत्तीण य विसुद्धो ॥६६॥

शब्दार्थ—**आहारतणूपज्जत्तगो**—पर्याप्त आहारकशरीरी, **उ**—और, **चउरंस**—समचतुरस्रसंस्थान, **मउयलहुयाणं**—मृदु और लघु स्पर्श का, **पत्तेय**—प्रत्येक नाम, **खगइ**—प्रशस्त विहायोगति, **परघाय**—पराघात, **तइयमुत्तीण**—तीसरे शरीर (आहारक सप्तक), **य**—और, **विसुद्धो**—विशुद्ध।

गाथार्थ—समचतुरस्रसंस्थान, मृदु, लघु, स्पर्श, प्रत्येकनाम, प्रशस्तविहायोगति, पराघात और आहारकसप्तक के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा विशुद्ध परिणामी पर्याप्त आहारकशरीरी करता है।

विशेषार्थ—समचतुरस्रसंस्थान, मृदु, लघु स्पर्श नाम, प्रत्येक, प्रशस्त-विहायोगति, पराघात और आहारकसप्तक इन तेरह प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनभाग की उदीरणा का स्वामी आहारकशरीरी पर्याप्त यानी आहारकशरीर की समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त और सर्व विशुद्धिसंपन्न आहारकशरीरी संयत[1] करता है। तथा—

---

१ आहारकशरीर की चौदह पूर्वधर संयत विकुर्वणा करता है। परन्तु यहाँ सर्वविशुद्ध का संकेत किया है, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि छठे गुण-स्थान में शरीर की विकुर्वणा कर सातवें में जाता हुआ अथवा सातवें में गया अप्रमत्त उक्त प्रकृति की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा का स्वामी हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरवेउव्विजई उज्जोयस्सायवस्स खरपुढवी।
नियगगईणं भणिया तइये समएणुपुव्वीणं ॥६७॥

शब्दार्थ—उत्तरवेउव्विजई—उत्तरवैक्रिय यति, **उज्जोयस्स**—उद्योत नाम का, **आयवस्स**—आतपनाम का, **खरपुढवी**—खर पृथ्वीकायिक, **नियगईणं**—अपनी-अपनी गति के, **भणिया**—कहे हैं, **तइये**—तीसरे, **समए**—समय में, **णुपुव्वीणं**—आनुपूर्वी के।

गाथार्थ—उत्तरवैक्रिययति उद्योत नाम की, खर पृथ्वीकायिक आतप नाम की और अपनी-अपनी गति के जो उदीरक कहे हैं, वे ही भव के तीसरे समय में वर्तमान जीव आनुपूर्वीनाम की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा के स्वामी हैं।

विशेषार्थ—वैक्रियशरीर की समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त सर्व विशुद्ध परिणाम वाला वैक्रियशरीरधारी यति उद्योतनामकर्म के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है[1] तथा सर्व विशुद्ध परिणामी, समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त और उत्कृष्ट आयु वाला खर बादर पृथ्वीकायिक जीव आतपनामकर्म के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है[2] तथा जिस-जिस गति के जो-जो जीव उदीरक कहे

१ यद्यपि आहारकशरीरी को भी उद्योत का उदय होता है तथा वैक्रिय से आहारकशरीर अधिक तेजस्वी होता है, लेकिन उसके उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा आहारकशरीरी को न बताकर वैक्रियशरीरी को ही कही है।

२ बृहत्संग्रहणी आदि ग्रन्थों में पृथ्वीकाय के अनेक भेद बताये हैं। उनमें खर—कठिन पृथ्वीकाय की ही उत्कृष्ट आयु होती है, इसीलिए उन जीवों को यहाँ ग्रहण किया है। सूर्य के विमान के नीचे रहे रत्नों के जीवों के ही आतप नाम का उदय होता है और वे खर पृथ्वीकाय हैं तथा यद्यपि शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त के आतप नाम का उदय हो सकता है, परन्तु उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा तो पर्याप्त के ही होती है, इसलिए यहाँ पृथ्वीकाय के योग्य पर्याप्तियों से पर्याप्त का ग्रहण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं वे ही जीव उस-उस आनुपूर्वी नामकर्म के उत्कृष्ट अनुभाग के उदीरक हैं। मात्र अपने-अपने भव के तीसरे समय में वर्तमान जीवों का ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि आनुपूर्वीनाम का उदय विग्रहगति में ही होता है तथा उदीरणा उदय सहभावी है और अधिक से अधिक विग्रह गति तीन समय की होती है। इसलिए यहां तीसरा समय लिया है। मनुष्य और देवानुपूर्वी के उत्कृष्ट अनुभाग के उदीरक विशुद्ध परिणामी और नरक-तिर्यंचानुपूर्वी के संक्लिष्ट परिणामी जानना चाहिये। तथा—

जोगन्ते सेसाणं सुभाणमियराण चउसुवि गईसु।
पज्जत्तुक्कडमिच्छेसु लद्धिहीणेसु ओहीणं ॥६८॥

शब्दार्थ—**जोगन्ते**—सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय में, **सेसाणं**—शेष प्रकृतियों की, **सुभाणं**—शुभ प्रकृतियों की, **इयराण**—इतर (अशुभ) प्रकृतियों की, **चउसुवि**—चारों ही, **गइसु**—गति के, **पज्जत्तुक्कडमिच्छेसु**—पर्याप्त उत्कृष्ट मिथ्यात्वी के, **लद्धिहीणेसु**—अवधिलब्धि रहित के, **ओहीणं**—अवधिद्विक की।

गाथार्थ—शेष शुभप्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा सयोगि के चरम समय में होती है। पर्याप्त उत्कृष्ट मिथ्यात्वी चारों गति के जीवों के शेष प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा होती है। अवधिद्विक की अवधिलब्धिहीन को होती है।

विशेषार्थ—जिन प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा पूर्व में कही जा चुकी है, उनके सिवाय शेष तैजससप्तक, मृदु-लघु स्पर्श के अतिरिक्त शेष शुभ वर्णादिनव, अगुरुलघु, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और तीर्थंकरनाम रूप पच्चीस शुभ प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय में वर्तमान जीवों के होती है। ये सभी पुण्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतियां हैं और सयोगिकेवली जैसे पुण्यशाली जीव हैं, जिससे उपर्युक्त पुण्य प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा सयोगिकेवली गुणस्थान में बताई है। तथा—

इतर—मति, श्रुत, मनपर्याय और केवल ज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, कर्कश-गुरु स्पर्श को छोड़कर शेष अशुभ वर्णादिसप्तक, अस्थिर और अशुभ रूप इकतीस अशुभ प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा चारों गति के समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त उत्कृष्ट संक्लेश में वर्तमान मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं। क्योंकि ये सभी पाप प्रकृतियां हैं। अतः इनके उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा तीव्र संक्लेश से होती है और ऐसा तीव्र संक्लेश मिथ्यादृष्टियों के पर्याप्तावस्था में होता है। इसीलिए यहाँ पर्याप्त मिथ्यादृष्टि का ग्रहण किया है तथा तीव्र संक्लेश संज्ञी में होने से चारों गति के संज्ञी जीव समझना चाहिए। तथा—

अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा अवधिज्ञान—अवधि दर्शनलब्धि रहित चारों गति के तीव्र संक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि के जानना चाहिये। अवधिज्ञान-दर्शनलब्धियुक्त जीवों के तो उनको उत्पन्न करते विशुद्ध परिणाम के कारण आवृत करने वाले कर्मों का अधिक रस क्षय होने से उत्कृष्ट रस सत्ता में रहना नहीं है, जिससे उत्कृष्ट रस की उदीरणा नहीं हो सकती है। इसीलिये अवधिलब्धिहीन के उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा बताई है।

इस प्रकार से उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा का स्वामित्व जानना चाहिये। अब जघन्य अनुभाग-उदीरणा के स्वामियों का निर्देश करते हैं।

जघन्य अनुभाग- उदीरणास्वामित्व

सुयकेवलिणो मइसुयचक्खुअचक्खुणुदीरणा मन्दा।
विपुलपरमोहिगाणं मणनाणोहीदुगस्सा वि ॥६६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—सुयकेवलिणो—श्रुतकेवली के, **मइसुयचक्खुअचक्खुणुदीरणा**—मति-श्रुतज्ञानावरण, चक्षु-अचक्षुदर्शनावरण की उदीरणा, **मन्दा**—जघन्य, **विपुलपरमोहिगाणं**—विपुलमति और परमावधिज्ञान वाले के, **मणनाणोही-दुगस्सा**—मनपर्यायज्ञानावरण और अवधिद्विक की, **वि**—तथा।

गाथार्थ—मति-श्रुतज्ञानावरण और चक्षु-अचक्षुदर्शनावरण के जघन्य अनुभाग की उदीरणा श्रुतकेवली को तथा मनपर्यायज्ञानावरण और अवधिज्ञानावरण-अवधिदर्शनावरण की जघन्य अनुभाग-उदीरणा अनुक्रम से विपुलमति मनपर्यायज्ञान वाले एवं परमावधिज्ञान वाले के होती है।

विशेषार्थ—इस गाथा से जघन्य अनुभाग-उदीरणा स्वामित्व की प्ररूपणा प्रारम्भ की है। जघन्य अनुभाग-उदीरणास्वामित्व के प्रसंग में यह ध्यान रखना चाहिये कि पापप्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा विशुद्धपरिणामों से और पुण्यप्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा संक्लेश परिणामों से होती है। किस प्रकृति की जघन्य अनुभाग की उदीरणा के योग्य विशुद्धि और संक्लेश कहाँ होता है, इसका विचार करके स्वामित्व प्ररूपणा करना चाहिये।

कतिपय पापप्रकृतियों का जघन्य अनुभाग-उदीरणास्वामित्व इस प्रकार है—क्षीणकषायगुणस्थान की समयाधिक आवलिका स्थिति शेष रहे तब श्रुतकेवली—चौदह पूर्वधर के मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण और अचक्षुदर्शनावरण के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है तथा क्षीणकषायगुणस्थान की समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे तब विपुलमतिमनपर्यायज्ञानी के मनपर्यायज्ञानावरण के और परमावधिज्ञानी के अवधिज्ञान-दर्शनावरण के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है। क्योंकि श्रुतकेवली मनपर्यायज्ञानी और परमावधिज्ञानी के वह-वह ज्ञान जब उत्पन्न होता है तब तीव्र विशुद्धि के बल से अधिक अनुभाग का क्षय हुआ होता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा क्षपकश्रेणि पर आरूढ़ हुए वे महात्मा रसघात द्वारा उस कर्म के अत्यधिक रस का नाश करते हैं। जिससे अंत में बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब उक्त प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है। चरम आवलिका उदयावलिका है जिससे उसमें किसी करण की प्रवृत्ति नहीं होती है, इसीलिये समयाधिक आवलिका शेष रहे तब जघन्य अनुभागोदीरणा होती है, यह कहा है। तथा—

खवगम्मि विग्घकेवलसंजलणाणं सनोकसायाणं।
सगसगउदीरणंते निद्दापयलाणमुवसंते ॥७०॥

शब्दार्थ—खवगम्मि—क्षपक के, **विग्घकेवलसंजलणाणं**—अंतरायपंचक, केवलावरणद्विक, संज्वलन कषाय की, **सनोकसायाणं**—नव नोकषायों सहित, **सगसगउदीरणंते**—अपनी-अपनी उदीरणा के अंत में, **निद्दापयलाणमुवसते**—निद्रा और प्रचला की उपशांत मोहगुणस्थान में।

गाथार्थ—अंतरायपंचक, केवलावरणद्विक, संज्वलनकषाय, नवनोकषाय की जघन्य अनुभागउदीरणा क्षपक के अपनी-अपनी उदीरणा के अंत में तथा निद्रा और प्रचला की उपशांत-मोहगुणस्थान में होती है।

विशेषार्थ—अन्तरायपंचक, केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, संज्वलनकषायचतुष्क और नव नोकषाय कुल बीस प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा क्षपकश्रेणि में वर्तमान जीव के उन-उन प्रकृतियों की उदीरणा के अंत में होती है। अर्थात् उन-उन प्रकृतियों की अंतिम उदीरणा जिस समय होती है, उस समय में होती है। उनमें से अंतरायपचक केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण की जघन्य अनुभाग उदीरणा बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष स्थिति हो तब होती है। संज्वलनकषायचतुष्क और तीन वेद के जघन्य अनुभाग

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

की उदीरणा[1] अनिवृत्तिबादरसंपराय नामक नौवें गुणस्थान में उस-उस प्रकृति की अंतिम उदीरणा के समय तथा हास्यषट्क की जघन्य अनुभाग-उदीरणा अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान के चरम समय में होती है और निद्रा एवं प्रचला की उपशांतमोहगुणस्थान में[2] तीव्र विशुद्धि होने से जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है। तथा—

निद्दानिद्दाईणं पमत्तविरए विसुज्झमाणंमि ।
वेयगसम्मत्तस्स उ सगखवणोदीरणा चरिमे ।।७१।।

शब्दार्थ—**निद्दानिद्दाईणं**—निद्रा-निद्रात्रिक के, **पमत्तविरए**—प्रमत्तविरत के, **विसुज्झमाणंमि**—उत्कृष्ट विशुद्धि वाले, **वेयगसम्मत्तस्स**—वेदकसम्यक्त्व के, **सगखवणोदीरणा चरिमे**—उस प्रकृति के क्षय काल में अंतिम उदीरणा।

---

१ यहां और कर्मप्रकृति उदीरणाकरण गाथा ७० की मलयगिरि टीका में चारों संज्वलन और तीन वेद के जघन्य अनुभाग की उदीरणा नौवें गुणस्थान में बताई है। किन्तु गाथा में अपनी-अपनी उदीरणा के अंत में क्षपकश्रेणि में कही है। अतः संज्वलनलोभ की जघन्य अनुभाग-उदीरणा क्षपक के सूक्ष्मसंपराय की समयाधिक आवलिका शेष हो तब घटित होती है और कर्मप्रकृति उदीरणाकरण गाथा ७० की उपाध्याय यशोविजयजी कृत टीका में भी इसी प्रकार बतलाया है। जो अधिक समीचीन ज्ञात होता है।

२ जो निद्राद्विक का उदय क्षपकश्रेणि और क्षीणमोहगुणस्थान में नहीं मानते, उनके मत से उपशांतमोहगुणस्थान में जघन्यानुभाग की उदीरणा समझना चाहिये और जो क्षपकश्रेणि में निद्रा का उदय मानते हैं उनके मत से बारहवें गुणस्थान की दो समयाधिक आवलिका शेष रहे तब जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है, यह जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—निद्रा-निद्रात्रिक के जघन्य अनुभाग की उदीरणा उत्कृष्ट विशुद्धि वाले प्रमत्तविरत के तथा वेदकसम्यक्त्व की उस प्रकृति के क्षयकाल में अन्तिम उदीरणा के समय होती है।

विशेषार्थ—निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला और स्त्यानर्द्धि के जघन्य अनुभाग की उदीरणा विशुद्धि वाले—अप्रमत्तसंयतगुणस्थान के अभि-मुख प्रमत्तसंयत के होती है। क्योंकि स्त्यानर्द्धित्रिक का उदय छठे, प्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यन्त ही होता है। तथा—

क्षायिकसम्यक्त्व उत्पन्न करने के पहले मिथ्यात्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय का क्षय करे और उसके बाद सम्यक्त्वमोहनीय का क्षय करते उसकी जब समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति सत्ता में शेष रहे तब होने वाली अन्तिम उदीरणा के काल में सम्यक्त्वमोहनीय के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है और वह उदीरणा चारों गति में से किसी भी गति वाले विशुद्ध परिणामी जीव के होती है। क्योंकि सम्यक्त्वमोहनीय की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति सत्ता में शेष रहे और आयु पूर्ण हो तो चाहे जिस गति में जाता है और उस अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति का क्षय कर डालता है। उसको क्षय करते-करते समया-धिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे तब सम्यक्त्वमोहनीय की अन्तिम उदीरणा होती है। और यह जघन्य उदीरणा विशुद्ध परिणाम वाले को समझना चाहिए। तथा—

सम्मपडिवत्तिकाले पंचण्हवि संजमस्स चउचउसु।
सम्माभिमुहो मीसे आऊण जहण्णठितिगोत्ति ॥७२॥

शब्दार्थ—**सम्मपडिवत्तिकाले**—सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय में, **पंच-ण्हवि**—पाँच की भी, **संजमस्स**—संयम की प्राप्ति काल में, **चउचउसु**—चार-चार की, **सम्माभिमुहो**—सम्यक्त्व की प्राप्ति के अभिमुख, **मीसे**—मिश्रमोह-नीय की, **आऊण**—आयु की, **जहण्णठितिगोत्ति**—जघन्य आयु-स्थिति वाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय में पाँच की और संयम की प्राप्तिकाल में चार-चार की, जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है। सम्यक्त्व की प्राप्ति के अभिमुख हुआ मिश्रमोहनीय की और जघन्य आयुस्थिति वाला आयु की जघन्य अनुभाग-उदीरणा करता है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व तथा अपि शब्द से संयम इन दोनों की प्राप्तिकाल में अर्थात् एक साथ सम्यक्त्व और संयम प्राप्त करे तब यानि मिथ्यात्वगुणस्थान से ही सम्यक्त्व के साथ सर्वविरति चारित्र प्राप्त करने वाले जीव के मिथ्यात्वगुणस्थान के चरम समय में अत्यन्त विशुद्ध परिणाम होने से मिथ्यात्व एवं अनन्तानुबंधीकषायचतुष्क इन पाँच प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है।[1] तथा—

संयम की प्रतिपत्तिकाल में चार-चार प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है। अर्थात् अविरतसम्यग्दृष्टि से सर्वविरतिचारित्र प्राप्त करने वाले के चतुर्थ गुणस्थान के अन्त में अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ के जघन्य अनुभाग की, देशविरतिगुण-स्थान से सर्वविरति प्राप्त करने वाले के देशविरतिगुणस्थान के अन्त में तीव्र विशुद्धि होने से प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है। तथा—

---

१ पहले गुणस्थान से सम्यक्त्व प्राप्त कर चौथे, सम्यक्त्व के साथ ही देश-विरति प्राप्त कर पाँचवें और सम्यक्त्व के साथ सर्वविरति प्राप्त कर बीच के गुणस्थानों का स्पर्श किये बिना ही सर्वविरति गुणस्थान में जाया जा सकता है। पहले गुणस्थान से छठे गुणस्थान में जाने वाले के तीव्र विशुद्धि होती है, जिससे पहले के अन्त में उपर्युक्त पाँच प्रकृतियों की जघन्य अनुभाग उदीरणा हो सकती है। यहाँ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व ग्रहण करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो सम्यग्मिथ्यादृष्टि अनन्तर समय में सम्यक्त्व प्राप्त करेगा, उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि के मिश्रमोहनीय के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है। क्योंकि मिश्रदृष्टि वाला तथाप्रकार की विशुद्धि के अभाव में सम्यक्त्व और संयम एक साथ प्राप्त नहीं करता, परन्तु सम्यक्त्व को ही प्राप्त कर सकता है। इसीलिए गाथा में 'सम्माभिमुहोमीसे' पद दिया है। जिसका अर्थ यह है कि सम्यक्त्व के सन्मुख हुआ मिश्रदृष्टि मिश्रमोहनीय के जघन्य अनुभाग का उदीरक है। तथा—

अपनी-अपनी आयु की जघन्य स्थिति में वर्तमान अर्थात् जघन्य आयु वाले चारों गति के जीव अपनी-अपनी आयु के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करते हैं। इनमें नरकायु के सिवाय तीन आयु का जघन्य स्थितिबंध संक्लेशवशात् होता है और जघन्य अनुभाग बंध भी उसी समय होता है। क्योंकि नरकायु के बिना तीन आयु पुण्य प्रकृतियां हैं, उनकी जघन्य स्थिति और साथ ही जघन्य रस बंध भी संक्लेश से होता है, जिससे इन तीन आयु की जघन्य अनुभाग-उदीरणा के अधिकारी जघन्य आयु वाले हैं और नरकायु का जघन्य स्थिति बंध विशुद्धि वशात् होता है और उसका जघन्य रसबंध भी उसी समय ही होता है। क्योंकि नरकायु पाप प्रकृति है। इसलिए उसका जघन्य स्थितिबंध और साथ में जघन्य रसबंध भी विशुद्धि के योग में होता है। जिससे नरकायु के जघन्य रस की उदीरणा का अधिकारी भी उसकी जघन्यस्थिति वाला जीव है। तात्पर्य यह हुआ कि नरकायु के बिना शेष तीन आयु के जघन्य-अनुभाग का उदीरक उस उस आयु की जघन्य स्थिति में वर्तमान अति संक्लिष्ट परिणामी और नरकायु के जघन्य अनुभाग का उदीरक अपनी जघन्य स्थिति में वर्तमान अति विशुद्ध परिणाम वाला जीव है। तथा—

पोग्गलविवागियाणं भवाइसमये विसेसमुरलस्स।
सुहुमापज्जो वाऊ बादरपज्जत्त वेउव्वे ॥७३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ—पोग्गलविवागियाणं—पुद्‌गलविपाकी प्रकृतियों के, **भवाइसमये**—भव के आदि समय में, **विसेसं**—विशेष यह है कि, **उरलस्स**—औदारिक षट्क की, **सुहुमापज्जो**—सूक्ष्म अपर्याप्त, **वाऊ**—वायुकायिक, **बादरपज्जत्त**—बादर पर्याप्त, **वेउव्वे**—वैक्रियषट्क की।

गाथार्थ—पुद्‌गलविपाकी प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा भव के आदि समय में होती है। लेकिन विशेष यह है कि औदारिकषट्क की सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिक और वैक्रिय-षट्क की बादर पर्याप्त वायुकायिक करता है।

विशेषार्थ—पुद्‌गल के माध्यम से जिन-प्रकृतियों के विपाक—फल को जीव अनुभव करता है उन सभी पुद्‌गलविपाकी प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा भव—जन्म के प्रथम समय में होती है। इस सामान्य कथन का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

औदारिकषट्क के जघन्य अनुभाग की उदीरणा अल्प आयु वाला अपर्याप्त वायुकायिक जीव भव के प्रथम समय में करता है और वैक्रियषट्क के जघन्य अनुभाग की उदीरणा अल्प आयु वाला बादर पर्याप्त वायुकायिक जीव करता है। क्योंकि वैक्रियशरीर बादर पर्याप्त वायुकाय के ही होता है। इसीलिये बादर पर्याप्त का ग्रहण किया है। यहाँ षट्क में अंगोपांग का निषेध करने का कारण यह है—वायुकायिक जीव एकेन्द्रिय वाले हैं और एकेन्द्रिय जीव के अंगोपांग नामकर्म का उदय नहीं होता है।

अप्पाऊ बेइंदि उरलंगे नारओ तदियरंगे।
निल्लेवियवेउव्वा असण्णिणो आगओ कूरो ॥७४॥

शब्दार्थ—अप्पाऊ—अल्प आयु वाला, **बेइंदि**—द्वीन्द्रिय जीव, **उरलंगे**—औदारिक-अंगोपांग के, **नारओ**—नारक, **तदियरंगे**—उससे इतर अंगोपांग (वैक्रिय अंगोपांग) के, **निल्लेवियवेउव्वा**—जिसने वैक्रिय शरीर की उद्वलना की है, **असण्णिणो**—असंज्ञी से, **आगओ**—आया हुआ, **कूरो**—क्रूर।

गाथार्थ—अल्प आयु वाला द्वीन्द्रिय जीव औदारिक-अंगो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांग के और जिसने वैक्रिय की उद्वलना की है ऐसा असंज्ञी में से आया हुआ अति क्रूर नारक वैक्रिय-अंगोपांग के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करता है।

विशेषार्थ—अल्प आयु वाला द्वीन्द्रिय अपने भव के प्रथम समय में औदारिक-अंगोपांग के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करता है तथा पूर्व में उद्वलित निःसत्ताक किये गये वैक्रिय-अंगोपांग को अल्प काल बांधकर अपनी आयु के अंत में अपनी भूमिका के अनुसार दीर्घ आयु-वाला नारक हो, यानि कि एकेन्द्रिय भव में वैक्रिय की उद्वलना कर डाली और वहाँ से च्यवकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय हो, वहाँ अल्पकाल वैक्रिय का बंध कर जितनी अधिक आयु बंध सके, उतनी बांधकर नारक हो। असंज्ञी नारक का पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण आयु बांधता है, अतएव उतनी आयु से नारक हो तो वह अति संक्लिष्ट परिणामी नारक अपने भव के प्रथम समय में वैक्रिय-अंगोपांग के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करता है। तथा—

मिच्छोऽन्तरे किलिट्ठो वीसाइ धुवोदयाण सुभियाण।
आहारजई आहारगस्स अविसुद्धपरिणामो ॥७५॥

शब्दार्थ—मिच्छोऽन्तरे—विग्रहगति में वर्तमान मिथ्यादृष्टि, **किलिट्ठो**—संक्लिष्ट, **वीसाइ**—बीस, **धुवोदयाण**—ध्रुवोदया, **सुभियाण**—शुभ, **आहारजई**—आहारक यति, **आहारगस्स**—आहारकसप्तक के, **अविसुद्ध-परिणामो**—अविशुद्ध परिणामी।

गाथार्थ—विग्रहगति में वर्तमान संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि ध्रुवोदया बीस शुभ प्रकृतियों के तथा विशुद्ध परिणामी आहारक यति आहारकसप्तक के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करता है।

विशेषार्थ—विग्रहगति में वर्तमान अनाहारी अति संक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि तैजससप्तक, एवं मृदु, लघु स्पर्श वर्जित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभवर्णादिनवक, अगुरुलघु, स्थिर, शुभ और निर्माण रूप शुभ ध्रुवोदया बीस प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है तथा स्वप्रायोग्य संक्लिष्ट परिणाम वाला आहारक यति (प्रमत्तसंयत-गुणस्थानवर्ती मुनि) आहारकसप्तक के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करता है।

पुण्यप्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा अति संक्लिष्ट परिणामी के होती है और वैसा संक्लेश प्रथम गुणस्थान में होता है। इसीलिये ध्रुवोदया बीस शुभप्रकृतियों की उदीरणा के लिये मिथ्या-दृष्टि का ग्रहण किया है और अति अल्प योग-बल लेने के लिये विग्रहगति में वर्तमान जीव का संकेत किया है। तथा—

अप्पाउ रिसभचउरंसगाण अमणो चिरट्ठिइ चउण्हं ।
संठाणाण मणूओ संघयणाणं तु सुविसुद्धो ॥७६॥

शब्दार्थ—**अप्पाउ**—अल्प आयु वाला, **रिसभचउरंसगाण**—वज्रऋषभ-नाराचसंहनन और समचतुरस्रसंस्थान के, **अमणो**—असंज्ञी, **चिरट्ठिइ**—दीर्घ स्थिति वाला, **चउण्हं**—चार, **संठाणाण**—संस्थानों के, **मणूओ**—मनुष्य, **संघयणाणं**—संहननों के, **तु**—और, **सुविसुद्धो**—सुविशुद्ध परिणाम वाला।

गाथार्थ—अल्प आयु वाला असंज्ञी वज्रऋषभनाराचसंहनन और समचतुरस्रसंस्थान के एवं दीर्घ स्थिति वाला असंज्ञी चार संस्थान के और विशुद्ध परिणाम वाला मनुष्य चार संहनन के जघन्य अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है।

विशेषार्थ—अल्प आयु वाला, अतिसंक्लिष्टपरिणामी भव के प्रथम समय में वर्तमान आहारी और मिथ्यादृष्टि असंज्ञी पंचेन्द्रिय वज्र-ऋषभनाराचसंहनन और समचतुरस्रसस्थान के जघन्य अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है। क्योंकि ये प्रकृति शुभ हैं, अतएव इनकी जघन्य अनुभाग-उदीरणा में क्लिष्टपरिणाम हेतु हैं तथा अल्प आयु वाला क्लिष्ट परिणामी होता है, इसलिये यहाँ अल्पायु यह विशेषण दिया है। तथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी आयु की उत्कृष्ट स्थिति में वर्तमान अर्थात् स्वप्रायोग्य उत्कृष्ट आयु वाला यानि पूर्वकोटि की आयु वाला आहारी भव के प्रथम समय में वर्तमान वही असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव मध्य के चार संस्थान के जघन्य अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है तथा सेवार्त और वज्रऋषभ नाराचसंहनन को छोड़कर बीच के चार संहनन के जघन्य अनुभाग की उदीरणा का स्वामी पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाला भव के प्रथम समय में वर्तमान आहारी और विशुद्ध परिणाम वाला मनुष्य है। क्योंकि उक्त प्रकृतियां अशुभ हैं। उनकी जघन्य रसोदीरणा में विशुद्ध परिणाम हेतु हैं। दीर्घ आयु वाला विशुद्ध परिणामी होता है, इसीलिये यहाँ दीर्घायु वाले का ग्रहण किया है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा मनुष्य प्रायः अल्प बल वाले होते हैं, इसलिये उक्त अशुभ संहनन की जघन्य अनुभाग-उदीरणा के स्वामी के रूप में मनुष्य कहा है। तथा—

हुण्डोवघायसाहारणाण सुहुमो सुदीह पज्जत्तो।
परघाए लहुपज्जो आयावुज्जोय तज्जोगो ॥७७॥

शब्दार्थ—**हुण्डोवघायसाहारणाण**—हुण्डक-संस्थान, उपघात, साधारण नाम का, **सुहुमो**—सूक्ष्म, **सुदीह**—दीर्घस्थिति वाला, **पज्जत्तो**—पर्याप्त, **परघाए**—पराघात की, **लहुपज्जो**—शीघ्र पर्याप्त, **आयावुज्जोय**—आतप उद्योत का, **तज्जोगो**—तद्योग्य।

गाथार्थ—हुण्डकसंस्थान, उपघात और साधारण नाम के जघन्य अनुभाग की उदीरणा का स्वामी दीर्घस्थिति वाला पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय है। पराघात की जघन्य अनुभाग-उदीरणा का स्वामी शीघ्र पर्याप्त हुआ तथा आतप-उद्योत की जघन्य अनुभाग-उदीरणा का स्वामी तद्योग्य पृथ्वीकाय है।

विशेषार्थ—अपने योग्य दीर्घ आयु वाला अति विशुद्ध परिणामी पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय हुण्डक संस्थान, उपघात और साधारण नाम के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है तथा शीघ्र पर्याप्त हुआ अतिक्लिष्ट परिणामी भी अपनी पर्याप्तावस्था के चरम समय में वर्तमान वहीं सूक्ष्म एकेन्द्रिय पराघातनाम की जघन्य अनुभाग-उदीरणा करता है। आतप उद्योत नाम की जघन्य रसोदीरणा उनके उदय के योग्य—उनका उदय जिनको हो सके ऐसे शरीरपर्याप्ति से पर्याप्तत्व के प्रथम समय में वर्तमान संक्लिष्ट परिणामी पृथ्वीकायिक जीव करते हैं। यद्यपि उद्योत का उदय पृथ्वीकाय के सिवाय अन्य जीवों के भी होता है, परन्तु उसके जघन्य रस की उदीरणा पृथ्वीकायिक जीव के ही होती है। तथा—

छेवट्ठस्स बिइंदी बारसवासाउ मउयलहुयाणं।
सण्णि विसुद्धाणाहारगो य पत्तेयमुरलसमं ॥७८॥

शब्दार्थ—**छेवट्ठस्स**—सेवार्त संहनन की, **बिइंदी**—द्वीन्द्रिय, **बारसवासाउ**—बारह वर्ष की आयु वाला, **मउयलहुयाणं**—मृदु और लघु स्पर्श की, **सण्णि**—संज्ञी, **विसुद्ध**—विशुद्ध, **अणाहारगो**—अनाहारक, **य**—और, **पत्तेयमुरलसमं**—प्रत्येक की औदारिक के समान।

गाथार्थ—बारह वर्ष की आयु वाला द्वीन्द्रिय सेवार्तसंहनन की तथा विशुद्ध परिणामी अनाहारक संज्ञी मृदु, लघु की जघन्य अनुभाग-उदीरणा करता है। प्रत्येकनाम की औदारिक के समान जानना चाहिये।

विशेषार्थ—बारह वर्ष की आयु वाला बारहवें वर्ष में वर्तमान द्वीन्द्रिय सेवार्तसंहनन की तथा अपनी भूमिका के अनुसार अति विशुद्ध परिणाम वाला अर्थात् जितनी उत्कृष्ट विशुद्धि संभव है वैसी विशुद्धि में वर्तमान अनाहारक संज्ञी पंचेन्द्रिय मृदु-लघु स्पर्श की जघन्य अनुभाग-उदीरणा करता है तथा प्रत्येकनाम की जघन्य अनुभाग उदीरणा का स्वामी जैसे औदारिकशरीरनाम के जघन्य रस की उदीरणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का स्वामी उदय के प्रथम समय में वर्तमान सूक्ष्म एकेन्द्रिय है वैसे ही उदय के प्रथम समय में वर्तमान सूक्ष्म एकेन्द्रिय जानना चाहिये तथा—

कक्खडगुरुणमंथे विणियट्टे णामअसुहधुवियाणं ।
जोगंतंमि नवण्हं तित्थस्साउज्जियाइंमि ॥७६॥

शब्दार्थ—कक्खडगुरुणमंथे—कर्कश और गुरु स्पर्श की मंथान के, **विणियट्टे**—संहार के समय में, **णामअसुहधुवियाणं**—नामकर्म की अशुभ ध्रुवोदया प्रकृतियों की, **जोगंतंमि**—सयोगिकेवली के अंत समय में, **नवण्हं**—नौ की, **तित्थस्साउज्जियाइंमि**—तीर्थंकर नाम की आयोजिकाकरण के पहले समय में ।

गाथार्थ—कर्कश और गुरु स्पर्श की मंथान के संहार समय में, नामकर्म की अशुभ नौ ध्रुवोदया प्रकृतियों की सयोगिकेवली के अंत समय में और तीर्थंकरनाम की आयोजिकाकरण के पहले समय में जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है ।

विशेषार्थ—समुद्घात से निवृत्त होते समय मंथान के संहरणकाल में कर्कश और गुरु स्पर्श की जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है तथा कृष्ण, नील वर्ण, दुरभिगंध, तिक्त-कटुरस, शीत-रूक्षस्पर्श, अस्थिर और अशुभनाम रूप नामकर्म की नौ अशुभ ध्रुवोदया प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय में वर्तमान जीव करता है । ये सभी पापप्रकृतियां हैं, जिनके मंद रस की उदीरणा विशुद्धिसंपन्न जीव करता है और तेरहवें गुणस्थान के चरम समय में सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि होने से इनके जघन्य अनुभाग की उदीरणा का वह अधिकारी है ।

तीर्थंकरनाम के मंद अनुभाग की उदीरणा आयोजिकाकरण के पहले समय में वर्तमान जीव करता है । आयोजिकाकरण प्रत्येक केवलि भगवान के होता है और वह केवलिसमुद्घात के पूर्व होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस आयोजिकाकरण की शुरुआत जिस समय होती है, उससे पहले तीर्थंकरनाम के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करता है। आयोजिकाकरण के प्रारंभ से ही उसके प्रचुर अनुभाग की उदीरणा करता है, इसलिये जिस समय आयोजिकाकरण की शुरुआत होती है उसके पहले समय में तीर्थंकरनामकर्म की जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है तथा—

सेसाणं वेयंतो मज्झिमपरिणामपरिणओ कुणइ।
पच्चयसुभासुभाविय चिंतिय णेओ विवागी य ॥८०॥

शब्दार्थ—सेसाणं—शेष प्रकृतियों की, **वेयंतो**—वेदन करने वाला, **मज्झिमपरिणामपरिणओ**—मध्यम परिणाम से परिणत, **कुणइ**—करता है, **पच्चयसुभासुभाविय**—प्रत्यय, शुभाशुभत्व, **चिंतिय**—विचार कर, **णेओ**—जानना चाहिये, **विवागी**—वेदन करने वाला—स्वामी, **य**—और।

गाथार्थ—शेष प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा का स्वामी—उस-उस प्रकृति का वेदन करने वाला, मध्यमपरिणाम से परिणत करता है। इस प्रकार प्रत्यय, शुभाशुभत्व आदि का विचार कर जघन्य-उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त से शेष रही साता-असातावेदनीय, चार गति, पांच जाति, चार आनुपूर्वी, उच्छ्वास, विहायोगतिद्विक, त्रस स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र, उच्चगोत्र रूप चौंतीस प्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा उस-उस प्रकृति के उदय में वर्तमान मध्यमपरिणाम परिणत समस्त जीवों के जानना चाहिये।

इसका कारण यह है कि ये सभी परावर्तमान प्रकृतियां हैं और उनके जघन्य अनुभाग की उदीरणा परावर्तमानभाव में होती है। यानि कि पुण्यप्रकृति का बंध करके पापप्रकृति को बांधने पर पुण्य-

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

प्रकृति के जघन्य अनुभाग की और पापप्रकृति बांधकर पुण्यप्रकृति बांधने पर पापप्रकृति के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है। परावर्तमानभाव हो तब परिणाम की मंदता होती है, जिससे उस समय तीव्र विशुद्धि या तीव्र संक्लेश नहीं होता है। अतएव तीव्र रस-बंध या तीव्र रस की उदीरणा नहीं होती है, किन्तु मंद रसबंध और मंद रस की उदीरणा होती है।

इस प्रकार से जघन्य अनुभाग-उदीरणा का स्वामित्व जानना चाहिये। अब समस्त कर्म प्रकृतियों के जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागो-दीरणा के स्वामित्व का सामान्य से बोध कराने के लिये उपाय बताते हैं—

परिणामप्रत्यय या भवप्रत्यय इन दोनों में से किस प्रत्यय-कारण से कर्म प्रकृतियों की उदीरणा होती है ? तथा जिस प्रकृति की उदीरणा हुई है, वह पुण्य प्रकृति है या पाप प्रकृति है ? और गाथागत अपि शब्द से पुद्गल, क्षेत्र, भव या जीव में किस विपाक वाली है ? इसका विचार करना चाहिये और इन सबका यथोचित विचार करके विपाकी—जघन्य अनुभाग-उदीरणा का या उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा का स्वामी कौन है, यह यथावत् समझ लेना चाहिये। जैसे कि परिणामप्रत्ययिक अनुभागोदीरणा प्रायः उत्कृष्ट होती है और भवप्रत्ययिक प्रायः जघन्य तथा शुभप्रकृतियों के जघन्य अनुभाग की उदीरणा संक्लेश से और उत्कृष्ट अनुभाग-उदी-रणा विशुद्धि से होती है और अशुभ प्रकृतियों के जघन्य रस की उदी-रणा विशुद्धि से तथा उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा संक्लेश से होती है। पुद्गलादि प्रत्ययों की जब प्रकर्षता—पुष्टता हो तब उत्कृष्ट और भव के प्रथम समय में जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है।

इस प्रकार प्रत्ययादि का यथावत् विचार कर उस-उस प्रकृति के उदय वाले को जघन्य या उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा के स्वामित्व का निर्णय कर लेना चाहिये।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पूर्वोक्त का सारांश यह है कि जैसे पुण्यप्रकृतियों का उत्कृष्ट विशुद्धि से तीव्र अनुभागबन्ध होता है और उसके बाद जैसे-जैसे विशुद्धि मन्द होती जाती है, वैसे-वैसे प्रकृतियों का अनुभागबन्ध भी हीन-हीन होता है तथा तीव्र विशुद्धि से पुण्यप्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा होती है और वह विशुद्धि जैसे-जैसे कम होती जाती है, वैसे-वैसे शुभ अनुभाग की उदीरणा हीन-हीन होती जाती है। किन्तु पाप प्रकृतियों के लिये इससे विपरीत प्ररूपणा जानना चाहिये। इसी प्रकार तीव्र रसबन्ध हो तब उदीरणा भी उत्कृष्ट रस (अनुभाग) की होती है और मन्द अनुभागबन्ध हो तब उदीरणा भी जघन्य अनुभाग की होती है। जैसे बन्ध के योग्य असंख्य अध्यवसायस्थान हैं, वैसे ही उदीरणा के योग्य भी असंख्यात अध्यवसायस्थान हैं और अध्यवसायों के अनुसार ही उदीरणा होती है।

इस प्रकार से अनुभाग-उदीरणा से सम्बन्धित विषयों का विचार करने से अनुभाग-उदीरणा की प्ररूपणा समाप्त हुई।[1]

अब प्रदेश उदीरणा की प्ररूपणा करने का अवसर प्राप्त है। अतः उसको प्रारम्भ करते हैं।

प्रदेश-उदीरणा

प्रदेश-उदीरणा के दो अर्थाधिकार हैं—१. साद्यादि-प्ररूपणा और २. स्वामित्व प्ररूपणा। इनमें से साद्यादि प्ररूपणा के दो प्रकार हैं—(१) मूल प्रकृति सम्बन्धी (२) उत्तर-प्रकृतिसम्बन्धी। उनमें से पहले मूल प्रकृति सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा प्रारम्भ करते हैं।

१ अनुभागोदीरणा सम्बन्धी विवेचन का प्रारूप परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलप्रकृतिसम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा

पंचण्हमणुक्कोसा तिहा चउद्धा य वेयमोहाणं ।
सेसवियप्पा दुविहा सव्वविगप्पाउ आउस्स ॥८१॥

शब्दार्थ—पंचण्हमणुक्कोसा—पाँच कर्मों की अनुत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा, **तिहा**—तीन प्रकार की, **चउद्धा**—चार प्रकार की, **य**—और, **वेयमोहाणं**—वेदनीय, मोहनीय की, **सेसवियप्पा**—शेष विकल्प, **दुविहा**—दो प्रकार के, **सव्वविगप्पाउ**—सभी विकल्प, **आउस्स**—आयु के ।

गाथार्थ—पांच कर्मों की अनुत्कृष्ट प्रदेशउदीरणा तीन प्रकार की और वेदनीय, मोहनीय की चार प्रकार की है । उक्त कर्मों के शेष विकल्प तथा आयु के सर्व विकल्प दो प्रकार के हैं ।

विशेषार्थ—'पंचण्हं' अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, नाम और गोत्र कर्म रूप पांच मूल कर्मप्रकृतियों की अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है । वह इस प्रकार— उक्त कर्मों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा गुणितकर्मांश जीव के अपनी-अपनी उदीरणा के अन्त में होती है । उसके नियत काल पर्यन्त ही होने से सादि-सांत है । उसके अतिरिक्त शेष सब उदीरणा अनुत्कृष्ट है और उसके अनादि काल से प्रवर्तमान होने से अनादि है । अभव्य की अपेक्षा ध्रुव और भव्य की अपेक्षा अध्रुव जानना चाहिये ।

उक्त पाँच कर्मों में से तीन घाति कर्मों की अन्तिम उदीरणा बारहवें और अघाति कर्मद्विक की तेरहवें गुणस्थान में होने से और उन दोनों गुणस्थानों से पतन का अभाव होने से सादि भंग संभव नहीं है । तथा—

वेदनीय और मोहनीय कर्म की अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा 'चउद्धा'— सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है । जो इस प्रकार—वेदनीय की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा अप्रमत्तभाव के सन्मुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए सर्वविशुद्ध प्रमत्तसंयत के और मोहनीय की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा उसकी उदीरणा के पर्यवसान—समाप्ति के समय सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान में होती है। दोनों कर्मों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा नियत काल पर्यन्त प्रवर्तित होने से सादि-सांत है। उसके अतिरिक्त अन्य समस्त अनुत्कृष्ट है। वह अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा अप्रमत्तसंयत गुणस्थान से गिरते वेदनीयकर्म की और उपशांतमोहगुणस्थान से गिरते मोहनीयकर्म की प्रारम्भ होती है, इसलिये सादि है। उस-उस स्थान को जिसने प्राप्त नहीं किया, उसकी अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव जानना चाहिये।

इन सातों कर्मों के उक्त से शेष रहे जघन्य, अजघन्य और उत्कृष्ट ये तीन विकल्प सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकार के हैं। वे इस प्रकार इन सातों कर्मों की जघन्य प्रदेशोदीरणा संक्लिष्टपरिणामी मिथ्यादृष्टि को होती है। संक्लेशपरिणाम से विशुद्धपरिणाम में आये हुए मिथ्यादृष्टि के अजघन्य होती है। इस प्रकार परावर्तित रूप से प्रवर्तमान होने से जघन्य, अजघन्य प्रदेशोदीरणा सादि सांत है और उत्कृष्ट विकल्प का विचार अनुत्कृष्ट के प्रसंग में किया जा चुका है। तथा—

आयुकर्म के जघन्य, अजघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट ये चारों विकल्प आयु के अध्रुवोदया प्रकृति होने से ही सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकार के हैं।

इस प्रकार से मूलप्रकृतिविषयक साद्यादि प्ररूपणा करने के पश्चात् अब उत्तर प्रकृतियों सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा करते हैं।

उत्तर प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा

तिविहा धुवोदयाणं मिच्छस्स चउव्विहा अणुक्कोसा।
सेसविगप्पा दुविहा सव्वविगप्पा य सेसाणं ॥८७॥

शब्दार्थ—**तिविहा**—तीन प्रकार की, **धुवोदयाणं**—ध्रुवोदया प्रकृतियों की, **मिच्छस्स**—मिथ्यात्व की, **चउव्विहा**—चार प्रकार की, **अणुक्कोसा**—अनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्कृष्ट, **सेसविगप्पा**—शेष विकल्प, **दुविहा**—दो प्रकार के, **सव्वविगप्पा**—सर्व विकल्प, **सेषाणं**—शेष प्रकृतियों के ।

गाथार्थ—ध्रुवोदया प्रकृतियों की अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा तीन प्रकार की और मिथ्यात्व की चार प्रकार की है । शेष विकल्प दो प्रकार के हैं तथा शेष प्रकृतियों के सर्व विकल्प दो प्रकार के हैं ।

विशेषार्थ—ध्रुवोदया सैंतालीस प्रकृतियों की अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । वह इस प्रकार—पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय और चार दर्शनावरण रूप चौदह प्रकृतियों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा अपनी-अपनी उदीरणा के पर्यवसान के समय बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब गुणितकर्मांश जीव के होती है । वह नियत काल पर्यन्त होने से सादि है । उसके अतिरिक्त अन्य समस्त अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा है और वह अनादिकाल से प्रवर्तमान होने से अनादि है । अभव्यापेक्षा ध्रुव और भव्यापेक्षा अध्रुव-सांत है । तथा—

तैजससप्तक, वर्णादि वीस, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु और निर्माण इन तेतीस प्रकृतियों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा गुणितकर्मांश सयोगिकेवली के चरम समय में होती है इसलिये सादि-सांत है । क्योंकि वह समय मात्र ही होती है । उसके अतिरिक्त अन्य सभी अनुत्कृष्ट है और वह अनादिकाल से प्रवर्तमान होने से अनादि है । अभव्य की अपेक्षा ध्रुव और भव्य की अपेक्षा अध्रुव है ।

'मिच्छस्स चउव्विहा' अर्थात् मिथ्यात्व की अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है । वह इस प्रकार—संयम के साथ ही सम्यक्त्व को प्राप्त करने के उन्मुख मिथ्यादृष्टि को उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा होती है और उसको नियत काल पर्यन्त होने से सादि-सांत है । उसके अतिरिक्त शेष सब अनुत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। उसे सम्यक्त्व से गिरते प्रारंभ होने से वह सादि है, उस स्थान को प्राप्त नहीं करने वाले के अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है।

उक्त प्रकृतियों के शेष विकल्प—जघन्य, अजघन्य और उत्कृष्ट, सादि और अध्रुव हैं। वे इस प्रकार—उक्त समस्त प्रकृतियों को जघन्य प्रदेशोदीरणा अति संक्लिष्ट परिणाम होने पर मिथ्यादृष्टि के होती है और विशुद्ध परिणाम होने पर अजघन्य होती है तथा जब संक्लिष्ट परिणाम हों तब जघन्य, इस तरह मिथ्यादृष्टि को परावर्तित क्रम से होने के कारण ये दोनों सादि-अध्रुव-सांत हैं और अनुत्कृष्ट विकल्प के विचार के प्रसंग में उत्कृष्ट विकल्प का विचार पूर्व में किया जा चुका है। तथा—

शेष रही अध्रुवोदया एक सौ दस उत्तर प्रकृतियों की जघन्य, अजघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा उन प्रकृतियों के अध्रुवोदया होने से सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकार की है।

इस प्रकार से सादि आदि विकल्पों की प्ररूपणा जानना चाहिये। अब प्रदेशोदीरणा का स्वामी कौन है? इसका विचार करते हैं। स्वामित्व निरूपण के दो प्रकार हैं—१ उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणास्वामित्व और २ जघन्य प्रदेशोदीरणास्वामित्व। उनमें से पहले उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणास्वामित्व का निर्देश करते हैं।

उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणास्वामित्व

अणुभागुदीरणाए होंति जहन्नसामिणो जे उ।
जेट्ठपएसोदीरणसामी ते घाइकम्माणं ॥८३॥

शब्दार्थ—**अणुभागुदीरणाए**—अनुभाग-उदीरणा के, **होंति**—हैं, **जहन्न**—जघन्य, **सामिणो**—स्वामी, **जे**—जो, **उ**—ही, **जेट्ठपएसोदीरणसामी**—उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी, **ते**—वे, **घाइकम्माणं**—घाति कर्मों की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—घातिकर्मों की जघन्य अनुभागउदीरणा के जो स्वामी हैं, वे ही उन घातिकर्मों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी हैं।

विशेषार्थ—पूर्व में जो जघन्य अनुभाग-उदीरणा के प्रसंग में घाति-कर्मों की जघन्य अनुभागउदीरणा के स्वामी बताये हैं वे ही घातिकर्मों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी जानना चाहिये। जिसका स्पष्टी-करण इस प्रकार है—

अवधिज्ञानावरण के सिवाय चार ज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु और केवल दर्शनावरण इन सात प्रकृतियों की क्षीणमोहगुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब गुणितकर्मांश जीव के तथा अवधि-ज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण की क्षीणमोहगुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब अवधिलब्धिरहित गुणितकर्मांश के उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा होती है। इस समय गुणितकर्मांश समय प्रमाण जघन्य स्थिति, जघन्य अनुभाग और उत्कृष्ट प्रदेश की उदीरणा करता है। बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे तब उक्त प्रकृतियों की भी उतनी ही स्थिति सत्ता में शेष रहती है। अंतिम आवलिका उदयावलिका होने से उसके ऊपर की समय प्रमाणस्थिति और उस स्थितिस्थान में के जघन्य रसयुक्त अधिक से अधिक दलिकों को गुणितकर्मांश जीव उदीरता है।[1]

---

१ बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष स्थिति रहे तब प्रत्येक के जघन्य स्थिति की उदीरणा तो होती है, परन्तु प्रत्येक के जघन्य रस की ही उदीरणा होती तो जघन्य रस की उदीरणा के अधिकार में उत्कृष्ट श्रुतज्ञानी के या विपुलमति मनपर्यायज्ञानी के इस तरह के विशेषण जोड़कर जघन्य अनुभागोदीरणा न कहते। परन्तु सामान्य से यह कहा जाता कि बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब

(शेष अगले पृष्ठ पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निद्रा और प्रचला की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा उपशांतमोहगुणस्थान में वर्तमान जीव के, स्त्यानर्द्धित्रिक की अप्रमत्तभाव के सम्मुख हुए प्रमत्त मुनि के, मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधीकषाय की संयम सहित सम्यक्त्व को प्राप्त करने के उन्मुख मिथ्यात्वगुणस्थान के चरम समय में वर्तमान मिथ्यादृष्टि के मिश्रमोहनीय की जिस समय क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त हो, उससे पहले के समय में अर्थात् तीसरे गुणस्थान से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त कर चौथे गुणस्थान में जाते तीसरे गुणस्थान के चरम समय में, अप्रत्याख्यानावरणकषाय की अनन्तर समय में सर्वविरति चारित्र प्राप्त करने के उन्मुख अविरतसम्यग्दृष्टि के, प्रत्याख्यानावरणकषाय की अनन्तर समय में सर्वविरति चारित्र प्राप्त करने के उन्मुख देशविरति के, संज्वलन क्रोध, मान और माया की उस-उस कषाय के उदय वाले के अपने-अपने उदय के पर्यवसान समय में, तीन वेद और संज्वलन लोभ की उस-उस प्रकृति के उदय वाले क्षपक के उक्त प्रकृति की समयाधिक आवलिकाप्रमाण स्थिति शेष रहे तब और हास्यषट्क की अपूर्वकरण गुणस्थान के चरम समय में

(पृष्ठ ११७ का शेष)

श्रुतज्ञानावरणादि की जघन्य अनुभागोदीरणा होती है। परन्तु ऐसा तो कहा नहीं, अतः यह ज्ञात होता है कि उत्कृष्ट श्रुतपूर्वी आदि के जघन्य रस की, अन्य के मध्यम रस की उदीरणा होती है तथा यह भी नहीं समझना चाहिये कि जघन्य अनुभागोदीरणा करने वाले प्रत्येक के उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा ही होती है। क्योंकि गुणितकर्मांश हो तो करता है, अन्य मध्यम प्रदेशोदीरणा करते हैं। मात्र जिस स्थान पर घातिकर्म की जघन्य अनुभागोदीरणा कही है, वहीं उसकी उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा होती है। जैसे कि मतिज्ञानावरणादि की बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब जघन्य रसोदीरणा कही है वैसे ही बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब उन प्रकृतियों की गुणितकर्मांश के उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा भी कहना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा होती है तथा वह गुणितकर्मांश जीव के होती है, यह समझना चाहिये । तथा—

वेयणियाण पमत्तो अपमत्तत्तं जया उ पडिवज्जे ।
संघयणपणगतणुदुगुज्जोयाणं तु अपमत्तो ॥८४॥

शब्दार्थ—**वेयणियाण**—वेदनीय की, **पमत्तो**—प्रमत्तसंयत, **अपमत्तत्तं**—अप्रमत्तत्व को, **जया**—जब, **उ**—ही, **पडिवज्जे**—प्राप्त करने वाला, **संघयणपणग**—संहननपंचक, **तणुदुगुज्जोयाणं**—तनुद्विक और उद्योत का, **तु**—और, **अपमत्तो**—अप्रमत्तसंयत ।

गाथार्थ—वेदनीय की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी अप्रमत्तत्व प्राप्त करने वाला प्रमत्त है तथा संहननपंचक, तनुद्विक और उद्योत का उत्कृष्टप्रदेशोदीरक अप्रमत्तसंयत है ।

विशेषार्थ—जो बाद के (आगे के) समय में अप्रमत्तत्व प्राप्त करेगा ऐसा प्रमत्तसंयत साता-असाता रूप वेदनीयकर्म की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी है । क्योंकि उसके सर्वविशुद्ध परिणाम होते हैं और विशुद्ध परिणामों से उनकी उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा होती है तथा प्रथम संहनन के सिवाय शेष पांच संहनन, वैक्रियसप्तक, आहारकसप्तक और उद्योत नामकर्म की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी अप्रमत्तसंयत है । तथा—

तिरियगईए देसो अणुपुव्विगईण खाइयो सम्मो ।
दुभगाईनीआणं विरइ अब्भुट्ठिओ सम्मो ॥८५॥

शब्दार्थ—**तिरियगईए**—तिर्यंचगति की, **देसो**—देशविरत, **अणुपुव्विगईण**—आनुपूर्वी और गतियों का, **खाइयो सम्मो**—क्षायिक सम्यग्दृष्टि, **दुभगाईनीआणं**—दुर्भग आदि और नीचगोत्र की, **विरइ**—विरति, **अब्भुट्ठिओ**—सन्मुख हुआ, **सम्मो**—सम्यग्दृष्टि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ—तिर्यंचगति की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी देशविरत, आनुपूर्वी और गति (देव, नारक गति) का क्षायिक सम्यग्दृष्टि, दुर्भग आदि और नीचगोत्र का विरति के सन्मुख हुआ अविरत सम्यग्दृष्टि है।

विशेषार्थ—तिर्यंचगति की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी देशविरत है तथा उस-उस गति में अपनी आयु के उदय के तीसरे समय में वर्तमान क्षायिक सम्यग्दृष्टि चार आनुपूर्वी की[1] और वही क्षायिक सम्यग्दृष्टि देव-नरक गति की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी है तथा विरति प्राप्त करने के सन्मुख हुआ यानि अनन्तर समय में जो संयम को प्राप्त करेगा ऐसा वह अविरतसम्यग्दृष्टि दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी है। तथा—

देवनिरयाउगाणं जहण्णजेट्ठट्ठिई गुरुअसाए।
इयराऊणं इयरा अट्ठमवासेट्ठ वासाऊ ॥८६॥

शब्दार्थ—**देवनिरयाउगाणं**—देव और नरक आयु की, **जहण्णजेट्ठट्ठिई**—जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति वाला, **गुरुअसाए**—गुरु असाता का उदयवाला, **इयराऊणं**—इतर आयु (मनुष्य तिर्यंचायु) की, **इयरा**—इतर (मनुष्य तिर्यंच), **अट्ठमवासेट्ठ वासाऊ**—आठ वर्ष की आयु वाला आठवें वर्ष में वर्तमान।

गाथार्थ—देवायु और नरकायु की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी गुरु असाता (दुःख) का उदय वाला अनुक्रम से जघन्य और उत्कृष्ट आयु वाला देव नारक है तथा इतर (मनुष्यायु और तिर्यं-

---

१ कर्मप्रकृति में कहा है कि नरक-तिर्यंचानुपूर्वी की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी क्षायिक सम्यग्दृष्टि और शेष दो आनुपूर्वियों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी सामान्य सम्यग्दृष्टि है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चायु) की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी आठ वर्ष की आयु वाला आठवें वर्ष में वर्तमान क्रमशः मनुष्य और तिर्यंच जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति वाला गुरु असाता—दुःख से आक्रान्त देव और नारक अनुक्रम से देवायु, नरकायु की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी है। इसका तात्पर्य यह है कि दस हजार वर्ष की आयु वाला अत्यन्त चरम दुःख के उदय में वर्तमान अर्थात् दुःखी देव देवायु की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी है क्योंकि पुण्य का प्रकर्ष अल्प होने से अल्प आयु वाला देव दुःखी हो सकता है और मित्रवियोगादि के कारण तीव्र दुःखोदय भी संभव है तथा तीव्र दुःख आयु की प्रबल उदीरणा होने में कारण है, इसीलिये अल्प आयु वाले देव का ग्रहण किया है तथा तेतीस सागरोपम की आयु वाला अत्यन्त दुःखी नारक नरकायु की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा करता है। क्योंकि अधिक दुःख का अनुभव करने वाला अधिक पुद्गलों का क्षय करता है, इसलिये उसका ग्रहण किया है तथा इतर—तिर्यंचायु, मनुष्यायु की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी अनुक्रम से आठ वर्ष की आयु वाला आठवें वर्ष में वर्तमान अत्यन्त दुःखी तिर्यंच और मनुष्य जानना चाहिये। तथा—

एगंतेणं चिय जा तिरिक्खजोग्गाऊ ताण ते चेव।
नियनियनामविसिट्ठा अपज्जनामस्स मणु सुद्धो ॥८७॥

शब्दार्थ—**एगंतेणं चिय**—एकान्त रूप से ही, **जा**—जो, **तिरिक्खजोग्गाऊ**—तिर्यंचप्रायोग्य, **ताण**—उनकी, **ते चेव**—वही, **नियनियनामविसिट्ठा**—अपने-अपने विशिष्ट नाम वाले, **अपज्जनामस्स**—अपर्याप्त नाम की, **मणु**—मनुष्य, **सुद्धो**—विशुद्ध।

गाथार्थ—एकान्त रूप से तिर्यंचगति उदयप्रायोग्य प्रकृतियों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी उस-उस विशिष्ट नामवाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंच हैं तथा अपर्याप्तनाम की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी विशुद्ध परिणाम वाला मनुष्य है।

विशेषार्थ—जिन प्रकृतियों का एकान्ततः तिर्यंचगति में ही उदय हो ऐसी एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण इन आठ प्रकृतियों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी उस-उस नाम वाले तिर्यंच ही हैं। जैसे कि एकेन्द्रियजाति और स्थावर नाम की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी अपने योग्य सर्वविशुद्ध बादर एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक, आतपनाम की की खर बादर पृथ्वीकायिक, सूक्ष्मनाम की पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, साधारणनाम की साधारण वनस्पति और विकलेन्द्रियजाति की विकलेन्द्रिय जीव उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी हैं। ये सभी अपने-अपने योग्य उत्कृष्ट विशुद्धि में वर्तमान जीव उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी समझना चाहिये। तथा—

अपर्याप्तनाम की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी अपर्याप्तावस्था के चरम समय में वर्तमान विशुद्ध परिणाम वाला संमूर्च्छिम अपर्याप्त मनुष्य जानना चाहिये। तथा—

जोगंतुदीरणाणं जोगंते दुसरसुसरसासाणं।
नियगंते केवलीणं सव्वविसुद्धस्स सेसाणं ॥८८॥

शब्दार्थ—**जोगंतुदीरणाणं**—सयोगि के अंत में उदीरणा योग्य की, **जोगंते**—चरम समय में वर्तमान सयोगिकेवली के, **दुसरसुसरसासाणं**—दुःस्वर, सुस्वर उच्छ्वास की, **नियगंते**—उनके अंतकाल में, **केवलीणं**—केवली के, **सव्वविसुद्धस्स**—सर्वविशुद्ध परिणाम वाले के, **सेसाणं**—शेष प्रकृतियों की।

गाथार्थ—सयोगि के अंत में उदीरणायोग्य की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा चरम समय में वर्तमान सयोगिकेवली के तथा दुःस्वर, सुस्वर और उच्छ्वास नाम की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा उनके अंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल (निरोध काल) में सयोगिकेवली के होती है तथा शेष प्रकृतियों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा सर्वविशुद्ध परिणाम वाले के होती है।

विशेषार्थ—जिन प्रकृतियों के उदीरक चरम समय में वर्तमान सयोगिकेवली हैं ऐसी मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजससप्तक, औदारिकसप्तक, संस्थानषट्क, प्रथम संहनन, वर्णादि बीस, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, विहायोगतिद्विक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर और उच्चगोत्र रूप बासठ प्रकृतियों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा करने वाले चरम समय में वर्तमान सयोगिकेवली हैं।

सुस्वर, दुःस्वर की स्वर के निरोधकाल में और उच्छ्वासनाम की उच्छ्वास के निरोधकाल में सयोगिकेवली उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा करते हैं तथा पूर्वोक्त से शेष रही जिन प्रकृतियों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी नहीं कहे हों, उन प्रकृतियों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा उस-उस प्रकृति के उदय वाले सर्वविशुद्ध परिणामी जानना चाहिये। जिसका आशय यह है कि शेष प्रकृतियों में पाँच अंतराय और सम्यक्त्वमोहनीय कर्म रहता है। इनमे से अंतराय की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब गुणितकर्मांश जीव के होती है और मिश्रमोहनीयकर्म जब सर्व-संक्रम द्वारा सम्यक्त्वमोहनीय में संक्रमित हो तब सम्यक्त्वमोहनीय की उत्कृष्ट प्रदेशसत्ता होती है, मिश्रमोहनीय संक्रमित होने के बाद संक्रमावलिका के अनन्तर सम्यक्त्वमोहनीय की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा गुणितकर्मांश के संभव है।

इस प्रकार से उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणास्वामित्व जानना चाहिये। अब जघन्य प्रदेशोदीरणास्वामित्व का कथन करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य प्रदेशोदीरणास्वामित्व

तप्पाओगकिलिट्ठा सव्वाण होंति खवियकम्मंसा ।
ओहीणं तव्वेई मंदाए सुही य आऊणं ॥८६॥

शब्दार्थ—**तप्पाओगकिलिट्ठा**—तत्प्रायोग्य संक्लिष्टपरिणाम वाला, **सव्वाण**—सब प्रकृतियों की, **होंति**—है, **खवियकम्मंसा**—क्षपितकर्मांश जीव, **ओहीणं**—अवधिद्विक का, **तव्वेई**—उनका वेदक, **मंदाए**—जघन्य, **सुही**—सुखी, **य**—और, **आऊणं**—आयु की ।

गाथार्थ—तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट परिणाम वाला क्षपितकर्मांश जीव सब प्रकृतियों की जघन्य प्रदेशोदीरणा का स्वामी है । उनमें अवधिद्विक का तद्वेदक और आयु का सुखी जीव जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो जीव जिस कर्मप्रकृति के उदीरक हैं और उन प्रकृतियों की उदीरणा करने वालों में अतिक्लिष्टपरिणाम वाले हैं यानि जो जीव अतिक्लिष्ट परिणाम से जिन कर्मप्रकृतियों की उदीरणा करते हैं, ऐसे क्षपितकर्मांश जीव उन प्रकृतियों की जघन्य प्रदेशोदीरणा के स्वामी हैं । जैसे कि—

अवधिज्ञानावरणवर्जित चार ज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरणवर्जित तीन दर्शनावरण, पच्चीस चारित्रमोहनीय की प्रकृति, मिथ्यात्व, दो वेदनीय, इन प्रकृतियों की जघन्य प्रदेशोदीरणा का स्वामी पर्याप्त अतिक्लिष्टपरिणामी मिथ्यादृष्टि जानना चाहिये ।

निद्रापंचक का तत्प्रायोग्य क्लिष्टपरिणामी पर्याप्त संज्ञी, सम्यक्त्व-मोहनीय का मिथ्यात्वगुणस्थान में जाने के लिये तत्पर सम्यक्त्व-मोहनीय का उदय वाला जीव, मिश्रमोहनीय का मिथ्यात्व में जाने के सन्मुख हुआ मिश्रमोहनीय का उदय वाला जीव जघन्य प्रदेशो-दीरक है ।

चार गति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकसप्तक, वैक्रियसप्तक, तैजस-सप्तक, संस्थानषट्क, संहननषट्क, वर्णादि बीस, पराघात, उपघात,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगुरुलघु, उच्छ्वास, उद्योत, विहायोगतिद्विक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, उच्चगोत्र, नीचगोत्र, निर्माण और पांच अंतराय इन नवासी प्रकृतियों की जघन्य प्रदेशोदीरणा का स्वामी अति संक्लिष्टपरिणामी पर्याप्त संज्ञी जीव समझना चाहिये।

आहारकसप्तक की उसका उदय वाला तत्प्रायोग्यक्लिष्टपरिणामी (प्रमत्तसंयत) जीव, चार आनुपूर्वी की तत्प्रायोग्य संक्लिप्ट परिणामी जीव, आतप की सर्व संक्लिष्ट खर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियजाति, स्थावर और साधारण की सर्वसंक्लिष्टपरिणामी बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्मनाम की सूक्ष्म, अपर्याप्तनाम की भव के चरम समय में वर्तमान अपर्याप्त मनुष्य, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति का अनुक्रम से सर्व संक्लिष्ट परिणाम वाला और भव के अन्त समय में वर्तमान द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जघन्य प्रदेशोदीरणा का स्वामी जानना चाहिये।

जब तक आयोजिकाकरण की शुरुआत नहीं हुई होती है तब तक यानि आयोजिकाकरण की शुरुआत होने के पहले तीर्थंकरनाम की जघन्य प्रदेशोदीरणा सयोगिकेवली भगवान करते हैं।

अवधिज्ञान-दर्शनावरण की जघन्य प्रदेशोदीरणा अवधिज्ञान और अवधिदर्शन वेदक यानि अवधिज्ञान जिसको उत्पन्न हुआ है, ऐसा अति-क्लिष्टपरिणाम वाला करता है। क्योंकि अवधिज्ञान उत्पन्न करते बहुत से पुद्गलों का क्षय होता है, इसलिये उसको अनुभव करने वाला यानि कि अवधिज्ञान वाला यहाँ ग्रहण किया है।

चार आयु की जघन्य प्रदेशोदीरणा अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार सुखी जीव करता है। उसमें नरकायु की दस हजार वर्ष का आयु वाला नारक करता है। क्योंकि जघन्य आयु वाला यह नारक अन्य नारकों की अपेक्षा सुखी है तथा शेष तीन आयु की जघन्य प्रदेशो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीरणा अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति में वर्तमान उस-उस आयु का उदय वाला करता है।

उक्त आशय की संग्राहक अन्य कर्तृक गाथा इस प्रकार है—

उक्कोसुदीरणाए सामी सुद्धो गुणियकम्मंसो।
इयराअ खविय कम्मो तज्जोगुद्दीरणा किलिट्ठो ॥

अर्थात् शुद्ध परिणाम वाला गुणितकर्मांश जीव उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का और तत्प्रायोग्य क्लिष्टपरिणाम वाला क्षपितकर्मांश जघन्य प्रदेशोदीरणा का स्वामी है[1]।

इस प्रकार प्रदेशोदीरणा से संबधित विषयों का निर्देश करने के साथ उदीरणाकरण की वक्तव्यता समाप्त हुई।

॥उदीरणाकरण समाप्त ॥

---

१ प्रदेशोदीरणा निरूपक प्रारूप परिशिष्ट में देखिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदीरणाकरण-प्ररूपणा अधिकार

मूल गाथाएँ

जं करणेणोकड्ढिय दिज्जइ उदए उदीरणा एसा ।
पगतिट्ठितिमाइ चउहा मूलुत्तरभेयओ दुविहा ॥१॥
वेयणीय मोहणीयाण होइ चउहा उदीरणाउस्स ।
साइ अधुवा सेसाण साइवज्जा भवे तिविहा ॥२॥
अधुवोदयाण दुविहा मिच्छस्स चउव्विहा तिहण्णासु ।
मूलुत्तरपगईणं भणामि उद्दीरगा एत्तो ॥३॥
घाईणं छउमत्था उदीरगा रागिणो उ मोहस्स ।
वेयाऊण पमत्ता सजोगिणो नामगोयाणं ॥४॥
उवपरघायं साहारण च इयरं तणुइ पज्जत्ता ।
छउमत्था चउदंसणनाणावरणंतरायाणं ॥५॥
तसथावराइतिगतिग आउ गईजातिदिट्ठिवेयाणं ।
तन्नामाणूपुव्वीण किंतु ते अन्तरगईए ॥६॥
आहारी उत्तरतणु नरतिरितव्वेयए पमोत्तूणं ।
उद्दीरंती उरलं ते चेव तसा उवंगं से ॥७॥
आहारी सुरनारग सण्णी इयरेऽनिलो उ पज्जत्तो ।
लद्धीए बायरो दीरगो उ वेउव्वियतणुस्स ॥८॥
तदुवंगस्सवि तेच्चिय पवणं मोत्तूण केई नर तिरिया ।
आहारसत्तगस्स वि कुणइ पमत्तो विउव्वन्तो ॥९॥
तेत्तीसं नामधुवोदयाण उद्दीरगा सजोगीओ ।
लोभस्स उ तणुकिट्टीण होंति तणुरागिणो जीवा ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदिय पज्जत्ता नरतिरिय चउरंसउसभपुव्वाणं ।
चउरंसमेव देवा उत्तरतणुभोगभूमा य ॥११॥

आइमसंघयणं चिय सेढीमारूढगा उदीरेंति ।
इयरे हुण्डं छेवट्ठगं तु विगला अपज्जत्ता ॥१२॥

वेउव्वियआहारगउदए न नरावि होंति संघयणी ।
पज्जत्तबायरे च्चिय आयवउद्दीरगो भोमो ॥१३॥

पुढवीआउवणस्सइ बायर पज्जत्त उत्तरतणू य ।
विगलपणिंदियतिरिया उज्जोवुद्दीरगा भणिया ॥१४॥

सगला सुगतिसराणं पज्जत्तासंखवास देवा य ।
इयराणं नेरइया नरतिरि सुसरस्स विगला य ॥१५॥

ऊसासस्स य पज्जत्ता आणुपाणभासासु ।
जा ण निरुम्भइ ते ताव होंति उद्दीरगा जोगी ॥१६॥

नेरइया सुहुमतसा वज्जिय सुहुमा य तह अपज्जत्ता ।
जसकित्तुदीरगाइज्जसुभगनामाण सण्णिसुरा ॥१७॥

उच्चंचिय जइ अमरा केई मणुया व नीयमेवण्णे ।
चउगइया दुभगाई तित्थयरो केवली तित्थं ॥१८॥

मोत्तूण खीणरागं इंदियपज्जत्तगा उदीरंति ।
निद्दापयला सायासायाई जे पमत्तत्ति ॥१९॥

अपमत्ताईउत्तरतणू य अस्संखयाउ वज्जेत्ता ।
सेसानिद्दाणं सामी सबंधगंता कसायाणं ॥२०॥

हासरईसायाणं अंतमुहुत्तं तु आइमं देवा ।
इयराणं नेरइया उड्ढं परियत्तणविहीए ॥२१॥

हासाईछक्कस्स उ जाव अपुव्वो उदीरगा सव्वे ।
उदओ उदोरणा इव ओघेणं होइ नायव्वो ॥२२॥

पगइट्ठाणविगप्पा जे सामी होंति उदयमासज्ज ।
तेच्चिय उदीरणाए नायव्वा घातिकम्माणं ॥२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोत्तु अजोगिठाणं सेसा नामस्स उदयवण्णेया।
गोयस्स य सेसाणं उदीरणा जा पमत्तोत्ति ॥२४॥

पत्तोदयाए इयरा सह वेयइ ठिइउदीरणा एसा।
बेआवलिया हीणा जावुक्कोसत्ति पाउग्गा ॥२५॥

वेयणियाऊण दुहा चउव्विहा मोहणीय अजहन्ना।
पंचण्ह साइवज्जा सेसा सव्वेसु दुविगप्पा ॥२६॥

मिच्छत्तस्स चउहा धुवोदयाणं तिहा उ अजहन्ना।
सेसविगप्पा दुविहा सव्वविगप्पा उ सेसाणं ॥२७॥

सामित्तद्धाछेया इह ठिइसंकमेण तुल्लाओ।
बाहल्लेण विसेसं जं जाणं ताण तं वोच्छं ॥२८॥

अंतोमुहुत्तहीणा सम्मे मिस्संमि दोहि मिच्छस्स।
आवलिदुगेण हीणा बंधुक्कोसाण परमठिई ॥२९॥

मणुयाणुपुव्विआहारदेवदुगसुहुमवियलतिअगाणं।
आयावस्स य परिवडणमंतमुहुहीणमुक्कोसा ॥३०॥

हयसेसा तित्थठिई पल्लासंखेज्जमेत्तिया जाया।
तीसे सजोगि पढमे समए उद्दीरणुक्कोसा ॥३१॥

भयकुच्छआयवुज्जोयसव्वघाईकसाय निद्दाणं।
अतिहीणसंतबंधो जहण्णउद्दीरगो अतसो ॥३२॥

एगिंदियजोगाणं पडिवक्खा बंधिऊण तव्वेई।
बंधालिचरमसमये तदागए सेसजाईणं ॥३३॥

दुभगाइनीयतिरिदुगअसारसंघयण नोकसायाणं।
मणुपुव्वऽपज्जतइयस्स सन्निमेवं इगागयगे ॥३४॥

अमणागयस्स चिरठिइअन्ते देवस्स नारयस्स वा।
तदुवंगगईणं आणुपुव्विणं तइयसमयंमि ॥३५॥

वेयतिगं दिट्ठिदुगं संजलणाणं च पढमट्ठिईए।
समयाहिगालियाए सेसाए उवसमे वि दुसु ॥३६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगिंदागय अइहीणसत्त सण्णीसु मीसउदयंते ।
पवणो सट्ठिइ जहण्णगसमसत्त विउव्वियस्संते ॥३७॥

चउरुवसमित्तु मोहं मिच्छं खविउं सुरोत्तमो होउं ।
उक्कोससंजमंते जहण्णगाहारगदुगाणं ॥३८॥

खीणंताणं खीणे मिच्छत्तकमेण चोद्दसण्हंपि ।
सेसाण सजोगंते भिण्णमुहुत्तट्ठिईगाणं ॥३९॥

अणुभागुदीरणाए घाइसण्णा य ठाणसन्ना य ।
सुहया विवागहेउ जोत्थ विसेसो तयं वोच्छं ॥४०॥

पुरिसित्थिविग्घ अच्चक्खुचक्खुसम्माण इगिदुठाणो वा ।
मणपज्जवपुंसाणं वच्चासो सेस बंधसमा ॥४१॥

देसोवघाइयाणं उदए देसो व होइ सव्वो य ।
देसोवघाइओ च्चिय अचक्खुसम्मत्तविग्घाणं ॥४२॥

घायं ठाणं च पडुच्च सव्वघाईण होई जह बंधे ।
अग्घाईणं ठाणं पडुच्च भणिमो विसेसोऽत्थ ॥४३॥

थावरचउ आयवउरलसत्ततिरिविगलमणुयतियगाणं ।
नग्गोहाइचउण्हं एगिंदिउसभाइछण्हंपि ॥४४॥

तिरिमणुजोगाणं मीसगुरुयखरनर य देवपुव्वीणं ।
दुट्ठाणिओच्चिय रसो उदए उद्दीरणाए य ॥४५॥

सम्मत्तमीसगाणं असुभरसो सेसयाण बंधुत्तं ।
उक्कोसुदीरणा संतयंमि छट्ठाणवडिए वि ॥४६॥

मोहणीयनाणावरणं केवलियं दंसणं विरियविग्घं ।
संपुन्नजीवदव्वे न पज्जवेसुं कुणइ पागं ॥४७॥

गुरुलहुगाणंतपएसिएसु चक्खुस्स सेसविग्घाणं ।
जोगेसु गहणधरणे ओहीणं रुविदव्वेसु ॥४८॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सेसाणं जह बंधे होइ विवागो उ पच्चओ दुविहो।
भवपरिणामकओ वा निग्गुणसगुणाण परिणइओ ॥४६॥

उत्तारतणुपरिणामे अहिय अहोन्तावि होंति सुसरचुया।
मिउलहु परघाउज्जोय खगइचउरंसपत्तेया ॥५०॥

सुभगाइ उच्चगोयं गुणपरिणामा उ देसमाईणं।
अइहीणफड्डगाओ अणंतंसो नोकसायाणं ॥५१॥

जा जंमि भवे नियमा उदीरए ताउ भवनिमित्ताओ।
परिणामपच्चयाओ सेसाओ सइ स सव्वत्थ ॥५२॥

तित्थयरं घाईणि य आसज्ज गुणं पहाणभावेण।
भवपच्चइया सव्वा तहेव परिणामपच्चइया ॥५३॥

वेयणिएणुक्कोसा अजहण्णा मोहणीय चउभेया।
सेसघाईणं तिविहा नामगोयाणणुक्कोसा ॥५४॥

सेसविगप्पा दुविहा सव्वे आउस्स होउमुवसन्तो।
सव्वट्ठगओ साए उक्कोसुद्दीरणं कुणइ ॥५५॥

कक्खडगुरुमिच्छाणं अजहण्णा मिउलहूणणुक्कोसा।
चउहा साइयवज्जा वीसाए धुवोदयसुभाणं ॥५६॥

अजहण्णा असुभधुवोदयाण तिविहा भवे तिवीसाए।
साईअधुवा सेसा सव्वे अधुवोदयाणं तु ॥५७॥

दाणाइअचक्खूणं उक्कोसाइंमि हीणलद्धिस्स।
सुहुमस्स चक्खुणो पुण तेइंदिय सव्वपज्जत्तो ॥५८॥

निद्दाणं पंचण्हवि मज्झिमपरिणामसंकिलिट्ठस्स।
पणनोकसायसाए नरए जेट्ठट्ठिति समत्तो ॥५६॥

पंचेन्दियतसबायरपज्जत्तगसायसुस्सरगईणं।
वेउव्वुस्सासस्स य देवो जेट्ठट्ठिति समत्तो ॥६०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मत्तमीसगाणं से काले गहिहिइत्ति मिच्छत्तं।
हासरईणं पज्जत्तगस्स सहसारदेवस्स ॥६१॥
गइहुण्डुवघायाणिट्ठखगतिदुसराइणीयगोयाणं ।
नेरइओ जेट्ठट्ठिइ मणुआ अंते अपज्जस्स ॥६२॥
कक्खडगुरुसंघयणा थीपुमसंट्ठाणतिरिगईणं च।
पंचिंदिओ तिरिक्खो अट्ठमवासेट्ठवासाऊ ॥६३॥
तिगपलियाउ समत्तो मणुओ मणुयगतिउसभउरलाणं ।
पज्जत्ता चउगइया उक्कोस सगाउयाणं तु ॥६४॥
हस्सट्ठिई पज्जत्ता तन्नामा विगलजाइसुहुमाणं।
थावरनिगोयएगिंदियाणमिह बायरा नवरं ॥६५॥
आहारतणूपज्जत्तगो उ चउरंसमउयलहुयाणं ।
पत्तेयखगइपरघायतइयमुत्तीण य विसुद्धो ॥६६॥
उत्तरवेउव्विजई उज्जोयस्सायवस्स खर पुढवी।
नियगगईणं भणिया तइये समएणुपुव्वीणं ॥६७॥
जोगन्ते सेसाणं सुभाणमियराण चउसुवि गईसु ।
पज्जत्तुक्कडमिच्छेसु लद्धिहीणेसु ओहीणं ॥६८॥
सुयकेवलिणो मइसुयचक्खुअचक्खुणुदीरणा मन्दा ।
विपुलपरमोहिगाणं मणनाणोहीदुगस्सा वि ॥६९॥
खवगम्मि विग्घकेवलसंजलणाणं सनोकसायाणं ।
सगसगउदीरणंते निद्दापयलाणमुवसंते ॥७०॥
निद्दानिद्दाईणं पमत्तविरए विसुज्झमाणंमि ।
वेयगसम्मत्तास्स उ सगखवणोदीरणा चरिमे ॥७१॥
सम्मपडिवत्तिकाले पंचण्हवि संजमस्स चउचउसु ।
सम्माभिमुहो मीसे आऊण जहण्णठितिगोत्ति ॥७२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पोग्गलविवागियाणं भवाइसमये विसेसमुरलस्स ।
सुहुमापज्जो वाऊ बादरपज्जत्त वेउव्वे ॥७३॥

अप्पाऊ बेइंदि उरलंगे नारओ तदियरंगे ।
निल्लेवियवेउव्वा असण्णिणो आगओ कूरो ॥७४॥

मिच्छोऽन्तरे किलिट्ठो वीसाइ धुवोदयाण सुभियाण ।
आहारजई आहारगस्स अविसुद्धपरिणामो ॥७५॥

अप्पाउ रिसभचउरंसगाण अमणो चिरट्ठिइचउण्हं ।
संठाणाण मणूओ संघयणाणं तु सुविसुद्धो ॥७६॥

हुण्डोवघायसाहारणाण सुहुमो सुदीह पज्जत्तो ।
परघाए लहुपज्जो आयावुज्जोय तज्जोगो ॥७७॥

छेवट्ठस्स बिइंदी बारसवासाउ मउयलहुयाणं ।
सण्णि विसुद्धाणाहारगो य पत्तेयमुरलसमं ॥७८॥

कक्खडगुरुणमंथे विणियट्टे णामअसुहधुवियाणं ।
जोगंतंमि नवण्हं तित्थस्साउज्जियाइंमि ॥७९॥

सेसाणं वेयंतो मज्झिमपरिणामपरिणओ कुणइ ।
पच्चयसुभासुभाविय चिंतिय णेओ विवागी य ॥८०॥

पंचण्हमणुक्कोसा तिहा चउद्धा य वेयमोहाणं ।
सेसवियप्पा दुविहा सव्वविगप्पाउ आउस्स ॥८१॥

तिविहा धुवोदयाणं मिच्छस्स चउव्विहा अणुक्कोसा ।
सेसविगप्पा दुविहा सव्वविगप्पा य सेसाणं ॥८२॥

अणुभागुदीरणाए होंति जहन्नसामिणो जे उ ।
जेट्ठपएसोदीरणासामी ते घाइकम्माणं ॥८३॥

वेयणियाण पमत्तो अपमत्तत्त जया उ पडिवज्जे ।
संघयणपणगतणुदुगुज्जोयाणं तु अपमत्तो ॥८४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरियगईए देसो अणुपुव्विगईण खाइयो सम्मो।
दुभगाईनीआणं विरइ अब्भुट्ठिओ सम्मो ॥८५॥
देवनिरयाउगाणं जहण्णजेट्ठट्ठिई गुरुअसाए।
इयराऊणं इयरा अट्ठमवासेट्ठ वासाऊ ॥८६॥
एगंतेणं चिय जा तिरिक्खजोग्गाऊ ताण ते चेव।
नियनियनामविसिट्ठा अपज्जनामस्स मणु सुद्धो ॥८७॥
जोगंतुदीरणाणं जोगंते दुसरसुसरसासाणं।
नियगंते केवलीणं सव्वविसुद्धस्स सेसाणं ॥८८॥
तप्पाओगकिलिट्ठा सव्वाण होंति खवियकम्मंसा।
ओहीणं तव्वेइ मंदाए सुही य आऊणं ॥८९॥

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथाओं की अनुक्रमणिका

गाथा	गाथांक	पृष्ठांक
अजहण्णा असुभधुवोदयाण	५७	८५
अणुभागुदीरणाए घाइसण्णा	४०	६२
अणुभागुदीरणाए होंति	८३	११६
अधुवोदयाण दुविहा	३	६
अपमत्ताईउत्तरतणू	२०	२३
अप्पाउ रिसभचउरंसगाण	७६	१०६
अप्पाऊ बेइन्दि उरलगे	७४	१०४
अमणागयस्स चिरठिइअन्ते	३५	५४
अंतोमुहुत्तहीणा सम्मे	२९	३६
आइमसंघयणं चिय	१२	१६
आहारतणूपज्जत्तगो	६६	९४
आहारी उत्तरतणु	७	११
आहारी सुरनारग	८	१२
उच्चं चिय जइ अमरा	१८	२१
उत्तरतणुपरिणामे अहिय	५०	७५
उत्तरवेउव्विजई उज्जोयस्स	६७	९५
उवपरघायं साहारणं	५	९
ऊसासस्स सरस्स य	१६	१९
एगंतेणं चिय जा तिरिक्ख	८७	१२१
एगिंदागय अइहीणसत्त	३७	५७
एगिंदियजोगाणं पडिवक्खा	३३	४८
कक्खडगुरुणमंथे	७९	१०९

गाथा	गाथांक	पृष्ठांक
कक्खडगुरुमिच्छाणं	५६	८६
कक्खडगुरुसंघयणा	६३	६२
खवगम्मि विग्घकेवल	७०	६६
खीणंताणं खीणे मिच्छत्तकमेण	३६	६०
गइहुण्डुवघायाणिट्ठखगति	६२	६१
गुरुलहुगाणंतपएसिएसु	४८	७२
घाईणं छउमत्था उदीरगा	४	८
घायं ठाणं च पडुच्च	४३	६६
चउरुवसमित्तु मोहं	३८	५६
छेवट्ठस्स बिइन्दी	७८	१०८
जं करणेणोकड्ढिय	१	१
जा जंमि भवे नियमा	५२	७८
जोगंतुदीरणाणं जोगंते	८८	१२२
जोगन्ते सेसाणं सुभाणं	६८	६६
सदुवंगस्सवि तेच्चिय	६	१२
तप्पाओगकिलिट्ठा	८६	१२४
तसथावराइतिगतिग	६	१०
तिगपलियाउ समत्तो	६४	६२
तित्थयरं घाईणि	५३	७६
तिरिमणुजोगाणं मीस	४५	६८
तिरियगईए देसो	८५	११६
तिविहा धुवोदयाणं मिच्छस्स	८२	११४
तेत्तीसं नामधुवोदयाण	१०	१४
थावरचउ आयव	४४	६७
दाणाइअचक्खूणं	५८	८७
दुभगाइनीयतिरिदुग	३४	५१
देवनिरयाउगाणं	८६	१२०
देसोवघाइयाणं उदए	४२	६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	गाथांक	पृष्ठांक
निद्दाणं पंचण्हवि	५६	८८
निद्दानिद्दाईणं पमत्तविरए	७१	१००
नेरइया सुहुमतसा	१७	२०
पगइट्ठाणविगप्पा जे	२३	२६
पत्तोदयाए इयरा	२५	२६
पुढवीआउवणस्सइ	१४	१७
पुरिसित्थिविग्घ अच्चक्खु	४१	६४
पोग्गलविवागियाणं	७३	१०३
पंचण्हमणुक्कोसा तिहा	८१	११३
पंचिंदिय पज्जत्ता नर	११	१५
पंचेन्दियतसबायरपज्जत्तग	६०	८६
भयकुच्छआयवुज्जोय	३२	४७
मणुयाणुपुव्विआहारदेवदुग	३०	३६
मिच्छत्तस्स चउहा धुवोदयाणं	२७	३३
मिच्छोऽन्तरे किलिट्ठो	७५	१०५
मोत्तुं अजोगिठाणं	२४	२७
मोत्तूण खीणरागं इन्दिय	१६	२१
मोहणीयनाणावरणं	४७	७१
वेउव्वियआहारगउदए	१३	१७
वेयणिएणुक्कोसा	५४	८०
वेयणियाऊण दुहा	२६	३१
वेयणियाण पमत्तो	८४	११६
वेयणीए मोहणीयाण	२	४
वेयतिगं दिट्ठिदुगं	३६	५६
सगला सुगतिसराणं	१५	१८
सम्मत्तमीसगाणं असुभरसो	४६	६६
सम्मत्तमीसगाणं से	६१	६०
सम्मपडिवत्तिकाले	७२	१०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	गाथांक	पृष्ठांक
सामित्तद्धाछेया इह	२८	३५
सुभगाइ उच्चगोयं	५१	७७
सुयकेवलिणो मइसुय	६९	९७
सेसविगप्पा दुविहा	५५	८०
सेसाणं जह बंधे होइ	४९	७३
सेसाणं वेयंतो मज्झि	८०	११०
हयसेसा तित्थठिई	३१	४६
हस्सट्ठिई पज्जत्ता तन्नामा	६५	९३
हासरईसायाणं अंतमुहुत्तं	२१	२४
हासाईछक्कस्स उ जाव	२२	२५
हुण्डोवघायसाहारणाण	७७	१०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : ३

प्रकृत्युदीरणापेक्षा मूल प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा : स्वामित्व

प्रकृति नाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय	×	भव्य	१२वें गुण. समयाधिक आवलिका शेष तक	अभव्य	क्षीणमोह गुणस्थान तक के
नाम गोत्र	×	,,	१३वें गुण. के चरम समय तक	,,	सयोगि केवली गुणस्थान तक के
वेदनीय	अप्रमत्त गुणस्थान से गिरने पर	,,	सादि स्थान अप्राप्त के	,,	प्रमत्त गुणस्थान तक के
मोहनीय	११वें गुण. से गिरने पर	,,	,,	,,	दसवें गुणस्थान तक के
आयु	भव के प्रथम समय में प्रवर्तमान होने से	भव की अन्त्य आवलिका में नहीं होने से	×	×	अचरम आवलिका में वर्तमान प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : ४

प्रत्युदीरणापेक्षा उत्तर प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा स्वामित्व

प्रकृति नाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ४ अन्तराय ५	×	१२वें गुण. समयाधिक आव. शेष रहने पर विच्छेद होने से	ध्रुवोदया होने से	अभव्य	क्षीणमोह गुणस्थान तक के जीव
निद्रा, प्रचला	अध्रुवोदया होने से	अध्रुवोदया होने से	×	×	इन्द्रिय पर्या. के बाद के समय से ग्यारहवें गुण तक के
स्त्यार्द्धित्रिक	,,	,,	×	×	इन्द्रिय पर्या. के बाद के समय से छठे गुणस्थान तक के मनुष्य संख्यात वर्षायुष्क मनुष्य तिर्यंच
मिथ्यात्व	सम्यक्त्व से गिरने पर	भव्य	अनादि मिथ्यात्वी	अभव्य	प्रथम गुणस्थानवर्ती
मिश्रमोह	अध्रुवोदया होने से	अध्रुवोदया होने से	×	×	मिश्र दृष्टि
सम्यक्त्व-मोहनीय	,,	,,	×	×	४-७ गुणस्थान तक के क्षायो. सम्यक्त्वी
अनन्ता. चतुष्क	,,	,,	×	×	आदि के दो गुणस्थानवर्ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
अप्रत्या. चतुष्क	अध्रुवो-दया होने	अध्रुवो-दया होने	×	×	आदि के चार गुण-स्थानवर्ती
प्रत्या. चतुक	,,	,,	×	×	आदि के पांच गुण-स्थानवर्ती
संज्व. त्रिक	,,	,,	×	×	नौ गुणस्थानवर्ती स्वबंध विच्छेद तक
संज्व. लोभ	,,	,,	×	×	दस गुणस्थानवर्ती
हास्यषटक	,,	,,	×	×	आठवें गुणस्थान तक
वेदत्रिक	,,	,,	×	×	नौ गुणस्थानवर्ती
साता वेद. असाता वेद.	,,	,,	×	×	प्रमत्त. गुणस्थान तक के जीव
उच्च गोत्र	,,	,,	×	×	१३वें गुणस्थान तक के यथासंभव मनुष्य, देव
नीच गोत्र	,,	,,	×	×	नारक, तिर्यंच और नीच कुलोत्पन्न मनुष्य चौथे गुणस्थान तक के
नरकायु	,,	,,	×	×	चरमवालिका बिना के नारक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिनाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
तिर्यंचायु	अध्रुवो-दया होने	अध्रु-वोदया होने से	×	×	चरमावलिका बिना का तिर्यंच
मनुष्यायु	,,	,,	×	×	चरमावलिका बिना का प्रमत्तगुण. मनुष्य
देवायु	,,	,,	×	×	चरमावलिका बिना का देव
नरकगति	,,	,,	×	×	नारक
देवगति	,,	,,	×	×	देव
तिर्यंचगति	,,	,,	×	×	तिर्यंच
मनुष्यगति	,,	,,	×	×	सयोगी गुणस्थान तक मनुष्य
एकेन्द्रिय जाति	,,	,,	×	×	एकेन्द्रिय
विकलेन्द्रिय जाति त्रिक	,,	,,	×	×	विकलेन्द्रियत्रिक
पंचेन्द्रिय त्रस चतुष्क	,,	,,	×	×	सयोगी गुणस्थान तक के जीव परन्तु प्रत्येक शरीरस्थ
औदारिक सप्तक	,,	,,	×	×	यथासंभव सयोगिगुण. तक के मनुष्य, तिर्यंच
वैक्रिय षट्क	,,	,,	×	×	देव, नारक, उत्तर वैक्रियशरीरी मनुष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
वैक्रिय-अंगो.	अध्रुवो-दया	अध्रुवो-दया	×	×	वायुकाय बिना पूर्वोक्त
तैजससप्तक, वर्णादि बीस, अगुरुलघु, निर्माण, अस्थिर, अशुभ	×	१२वें गुण. में विच्छेद होने से	ध्रुवो-दया होने से	अभव्य	सयोगि-गुणस्थान तक के जीव
आहारक सप्तक	अध्रुवो दया	अध्रुवो-दया	×	×	आहारक शरीरी मुनि
वज्रऋषभ नाराच संहनन	,,	,,			उत्पत्ति स्थान के प्रथम समय से १३वें गुणस्थान तक के यथा-संभव पर्याप्त मनुष्य, तिर्यंच पंचेन्द्रिय
मध्यम संह. चतुष्क	,,	,,	×	×	उत्पत्ति स्थान के प्रथम समय से सातवें गुणस्थान तक के यथा-संभव मनुष्य, तिर्यंच पंचेन्द्रिय
सेवार्त संह.	,,	,,	×	×	उत्पत्ति स्थान के प्रथम समय से यथासंभव सातवेंगुणस्थान तक के मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, विकलेन्द्रिय
समचतु. संस्थान	,,	,,	×	×	शरीरस्थ देव, युगलिक उत्तर-शरीरी संज्ञी, कितनेक पर्याप्त मनुष्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
मध्यम संस्थान चतुष्क	अध्रुवोदया होने से	अध्रुवोदया होने से	×	×	शरीरस्थ कितनेक पर्याप्त मनुष्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय
हुंडक संस्थान	,,	,,	×	×	शरीरस्थ नारक, असंज्ञी लब्धि-अपर्याप्त, कितनेक पर्याप्त संज्ञी मनुष्य तिर्यंच
आनुपूर्वी चतुष्क	,,	,,	×	×	विग्रहगतिवर्ती तत्तत् गतिवाले देव, नारक, मनुष्य, तिर्यंच
अशुभ विहायोगति	,,	,,	×	×	शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त नारक विकलेन्द्रिय और स्वोदय वाले पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-मनुष्य
शुभ विहायोगति	,,	,,	×	×	शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त देव, युगलिक, स्वोदयवर्ती पर्याप्त मनुष्य, तिर्यंच
आतप	,,	,,	×	×	शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त खरबादर पृथ्वीकाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिनाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
उद्योत	अध्रु-वोदया	अध्रुवो-दया	×	×	सूक्ष्म, लब्धि-अपर्याप्त तेज, वायु बिना तिर्यंच और उत्तर शरीरी देव, पंचे. तिर्यंच व मुनि
उपघात	,,	,,	×	×	शरीरस्थ सयोगि.गुण-स्थान तक के सभी
पराघात	,,	,,	×	×	लब्धि पर्याप्त शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त सयोगि. गुणस्थान तक के सभी
तीर्थंकर नाम	,,	,,	×	×	तीर्थंकर केवली सयोगी
स्थिर, शुभ	×	१३वें गुण. में विच्छेद होने से	ध्रुवोदया	अभव्य	सयोगि. गुणस्थान तक के
सुभग, आदेय	अध्रु-वोदया	अध्रुवो-दया	×	×	स्वोदयवर्ती गर्भज पर्याप्त तिर्यंच, मनुष्य, देव
यशःकीर्ति	,,	,,	×	×	तेज, वायु, सूक्ष्म, लब्धि अपर्याप्त और नारक बिना स्वोदय-वर्ती जीव
सुस्वर	,,	,,	×	×	भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त देव और स्वोदयवर्ती त्रस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिनाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
स्थावर	अध्रु-वोदया	अध्रुवो-दया	×	×	स्थावर
सूक्ष्म, साधारण	,,	,,	×	×	क्रमशः सूक्ष्म और शरीरस्थ साधारण जीव
अपर्याप्त	,,	,,	×	×	लब्धि अप. मनुष्य तिर्यंच
दुर्भग, अनादेय	,,	,,	×	×	नारक लब्धि अप. स्वोदयवर्ती गर्भज तिर्यंच, मनुष्य, देव, विकलेन्द्रिय, एकेन्द्रिय
अयशःकीर्ति	,,	,,	×	×	तेज, वायु नारक, सूक्ष्म, लब्धि अपर्याप्त और स्वोदयवर्ती शेष जीव
दुःस्वर	,,	,,	×	×	भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त नारक, स्वोदय-वर्ती मनुष्य, तिर्यंच

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : ५

स्थित्युदीरणापेक्षा मूल प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा का प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट
ज्ञानावरण	सादि अध्रुव	सादि अध्रुव	अनादि ध्रुव	सादि अध्रुव
दर्शनावरण	,,	,,	अध्रुव	,,
वेदनीय	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
मोहनीय	,,	,,	सादि, अनादि ध्रुव, अध्रुव	,,
आयु	,,	,,	सादि अध्रुव	,,
नाम, गोत्र	,,	,,	अनादि, ध्रुव अध्रुव	,,
अंतराय	,,	,,	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : ६

स्थित्युदीरणापेक्षा उत्तर प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा का प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अजघन्य स्थिति	अनुत्कृष्ट स्थिति
ज्ञानावरणपंचक दर्शनावरणचतुष्क अंतरायपंचक	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव
निद्रा, प्रचला	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
स्त्यानर्द्धित्रिक	,,	,,	,,	,,
मिथ्यात्वमोह	,,	,,	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव	,,
मिश्रमोह	,,	,,	सादि, अध्रुव	
सम्यक्त्वमोह	,,	,,	,,	,,
अनन्ता. अप्रत्या. प्रत्याख्यान चतुष्क, संज्व. त्रिक	,,	,,	,,	,,
संज्वलन लोभ हास्य, रति, शोक, अरति, भय, जुगुप्सा वेदत्रिक	,,	,,	,,	,,
वेदनीयद्विक गोत्रद्विक आयुचतुष्क	,,	,,	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अजघन्य स्थिति	अनुत्कृष्ट स्थिति
गतिचतुष्क जातिपंचक त्रसचतुष्क औदारिकसप्तक वैक्रियसप्तक	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव
तैजससप्तक वर्णादिबीस, अगुरुलघु, निर्माण, अस्थिर, अशुभ	,,	,,	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	,,
आहारकसप्तक	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
संस्थानषट्क	,,	,,	,,	,,
संहननषट्क	,,	,,	,,	,,
आनुपूर्वीचतुष्क	,,	,,	,,	,,
विहायोगतिद्विक	,,	,,	,,	,,
आतप, उद्योत	,,	,,	,,	,,
उपघात, पराघात	,,	,,	,,	,,
उच्छ्वासनाम	,,	,,	,,	,,
तीर्थंकरनाम	,,	,,	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अजघन्य स्थिति	अनुत्कृष्ट स्थिति
स्थिर, शुभ	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव अध्रुव	सादि, अध्रुव
सुभग, आदेय	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव
यशःकीर्ति, सुस्वर	,,	,,	,,	,,
स्थावरचतुष्क	,,	,,	,,	,,
दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति दुःस्वर	,,	,,	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : ७

मूल प्रकृतियों का स्थिति उदीरणा प्रमाण एवं स्वामित्व

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति स्वामित्व	जघन्य स्थिति स्वामित्व
ज्ञानावरण दर्शनावरण	आव. द्विकन्यून ३० को. को. सागर	१ समय	अति संक्लि. मिथ्या. संज्ञी पर्याप्त	समयाधिक आव. शेष क्षीणमोही
वेदनीय	आव. द्विकन्यून ३० को. को. सागर	साधिक पल्यो. असं-भाग न्यून ३/७ सागर	,,	जघन्य स्थिति वाला एकेन्द्रिय
मोहनीय	आव. द्विकन्यून ७० को. को. सागर	१ समय	,,	समयाधिक आव. शेष क्षपक सूक्ष्म संपरायी
आयु	आवलिकान्यून ३३ सागर	,,	उत्कृष्टस्थिति वाला भवाद्य समयवर्ती देव, नारक	समयाधिक आव. शेष आयुवाले सभी
नाम, गोत्र	आव. द्विकन्यून २० को. को. सागर	अन्तर्मुहूर्त	अति.संक्लिष्ट मिथ्यात्वी पर्याप्त संज्ञी	चरम समयवर्ती सयोगि.
अंतराय	आव. द्विकन्यून ३० को. को. सागर	१ समय	,,	समयाधिक आव. शेष क्षीणमोही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : ८

उत्तरप्रकृतियों का स्थिति उदीरणा प्रमाण एवं स्वामित्व

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्वा.	जघन्य स्वामी
ज्ञानावरण पंचक, दर्शना. चतुष्क, अंत-रायपंचक	आव. द्विकन्यून ३० को. को. सागर	१ समय	अति. सं० पर्याप्त पंचेन्द्रिय मिथ्यात्वी	समयाधिक आव. शेष क्षीणमोही
निद्राद्विक	अन्त. न्यून ३० को. को.	पल्यो. का असं. भाग न्यून ३/७ सा.	पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यात्वी	बंधावलिका के अन्त में ज. स्थिति सत्तावाला एकेन्द्रिय
स्त्यानर्द्धि त्रिक	,,	,,	पर्याप्त संज्ञी पंचे. मिथ्या. मनुष्य, तिर्यंच	,,
मिथ्यात्वमोह	आव. द्विक न्यून ७०.को. को. सागर	१ समय	पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यात्वी	मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति समयाधिक आव. शेष मिथ्यात्वी
मिश्रमोह	,,	पल्यो. असं. भाग न्यून १ सागर	मिश्रदृष्टि	एके. समान ज. स्थि. वाला एके. में से आगत सं. पंचे. मिश्रदृष्टि
सम्यक्त्व-मोह	एक अन्त. न्यून ७० को. को. सागर	१ समय	क्षयोपशम सम्यक्त्वी	क्षायक सम्यक्त्व प्राप्त करने वाला आव.शेष ४-७ गुण वाले यथा संभव चारों गति के वेदक सम्यक्त्वी
आद्य बारह कषाय	आव.द्विक न्यून ४० को. को. सागर	आव. द्विक अधिक पल्यो असं. भाग न्यून ४/७ सागर	पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यात्वी	बंधावलिका के अंत में जघन्य स्थिति सत्ता वाला एकेन्द्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	उ० स्थिति	ज. स्थिति	उ० स्वामी	ज. स्वा.
संज्व. त्रिक	आव. द्विक न्यून ४०को. को. सागर	१ समय	पर्याप्त संज्ञी. पंचे. मिथ्यात्व	नवम गुणस्थानवर्ती क्षपक स्वोदय चरम समय
संज्व. लोभ	,,	,,	,,	समयाधिक आव. शेष क्षपक उपशमक दशम गुणस्थानवर्ती
हास्य-रति शोक-अरति	आव. त्रिक न्यून ४० को. को. सागर	आव. द्विक अधिक अन्त-मुहूर्त सह पल्यो. असं. भाग न्यून ४/७ सागर	,,	,,
भय, जुगुप्सा	,,	आव. द्विक अधिक पल्यो. असं. न्यून ४/७ सागर	,,	बंधावलिका के अंत में ज. स्थिति सत्ता वाला एकेन्द्रिय
तीन वेद	,,	एक समय	,,	क्षपक नौवें गुणस्थान में स्वोदीरणा के अन्त समय
सातावेदनीय	आव. त्रिक न्यून ३० को. को. सागर	आव. द्विक अधिक अन्त-मु. सह पल्यो. असं. भाग न्यून ३/७ सागर	,,	ज. स्थिति सत्ता वाला एकेन्द्रिय में से आया संज्ञी, बंधावलिका के चरम समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिनाम	उ स्थि.	ज. स्थि.	उ. स्वा.	ज. स्वा
असाता वेद.	आव. द्विक न्यून ३० को. को. सागर	आव. द्विक अधिक अंत. मुं. सह पल्यो. असं. भाग न्यून ३/७ सा.	पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यात्वी	जघ. स्थि. सत्ता वाला एकेन्द्रिय में से आगत संज्ञी बंधावलिका के चरम समय
उच्च गोत्र	आव. त्रिक न्यून २० को. को. सागर	अंतर्मुहूर्त	पर्याप्त संज्ञी. मिथ्यात्वी देव और कुछ मनुष्य	चरम समयवर्ती सयोगि.
नीचगोत्र	आव. द्विक न्यून २० को. को. सागर	आव. द्विक अधिक अंतर्मु. सहित पल्यो. असं. भाग न्यून २/७ सागर	पर्याप्त संज्ञी मिथ्या. तिर्यंच मनुष्य नारक और नीच कुलोत्पन्न मनुष्य	जघ. स्थि. सत्ता वाला एकेन्द्रिय से आगत स्व. बंधावलिका का चरम समय संज्ञी
नरकायु	आव. न्यून ३३ सागर	१ समय	भवाद्य समयवर्ती उ.स्थिति वाला नारक	समयाधिक आव. शेष नारक
तिर्यंचायु	आव. न्यून ३ पल्य	१ समय	भवाद्य समयवर्ती उ. स्थि. वाला तिर्यंच	समयाधिक आव. शेष तिर्यंच
मनुष्यायु	,,	,,	भवाद्य समयवर्ती उ. स्थि. वाला मनुष्य	समयाधिक आव. शेष मनुष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिनाम	उ. स्थि.	ज. स्थि.	उ. स्वा.	ज. स्वा.
देवायु	आव. न्यून ३३ सागर	१ समय	भवाद्य समय वर्ती उ. स्थि. वाला देव	समयाधिक आव. शेष देव
नरकगति	आव. अधिक अन्त. न्यून २० को. को. सागर	साधिक पल्यो. के दो असं. भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समयवर्ती पांचवें आदि तीन नरकों के नारक मिथ्या.	अल्पकाल बांध दीर्घायुवाला असंज्ञी में से आगत चरम समय वर्ती उ. स्थि. वाला नारक
देवगति	,,	,,	भवाद्य समयवर्ती मिथ्यात्वी देव	अल्पकाल बांध दीर्घायु वाला असंज्ञी में से आगत चरम समय वर्ती उ. स्थिति वाला देव
तिर्यंचगति	आव. त्रिक न्यून २० को. को. सागर	आव. द्विक अधिक अन्त. सहित पल्यो. असं. भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समयवर्ती मिथ्यात्वी तिर्यंच	लघु स्थिति वाला एकेन्द्रिय में से आगत बंधावलिका के चरम समयवर्ती संज्ञी तिर्यंच
मनुष्यगति	,,	अन्तमुंहूर्त	मिथ्यात्वी मनुष्य	चरम समयवर्ती सयोगि.
एकेन्द्रिय जाति	साधिक आव. अन्तमुं. न्यून २० को. को. सागर	आव. द्विक अधिक चार अन्त. सहित पल्यो. असं. भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समय वर्ती मिथ्या. एके.	जघ. स्थिति सत्ता वाला बंधाव. के चरम समय एके.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिनाम	उ. स्थि.	ज. स्थि.	उ. स्वा.	ज. स्वा.
विकले. जाति	आव. द्विक अधिक अन्त. न्यून २० को. को. सागर	आव. द्विक अधिक चार अन्त सहित पल्यो. असं. भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समयवर्ती यथासंभव विकलेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि	ज. स्थिति वाला एके. में से आगत बंधाव के चरम समय यथा संभव द्वीन्द्रियादि
पंचे. जाति त्रसचतुष्क	आव. द्विक न्यून २० को. को.सागर	अन्तमुर्हूर्त	मिथ्या. पर्याप्त संज्ञी	चरम समयवर्ती सयोगि.
औदारिक सप्तक	साधिक आव. न्यून २० को. को. सागर	,,	मिथ्या. पर्या. भवाद्य समय तिर्यंच	,,
वैक्रिय षट्क	आव. द्विक न्यून २० को. को. सागर	साधिक पल्यो. असं. भाग न्यून २/७ सागर	मिथ्या. उत्तर वै. शरीरी मनुष्य तिर्यंच संज्ञी	चरम वैक्रिय शरीरी बादर पर्याप्त वायुकाय
वैक्रिय अंगोपांग	,,	साधिक दो पल्यो. असं. भाग न्यून २/७ सागर	,,	
तैजस सप्तक वर्णादि वीस अगुरुलघु निर्माणअस्थिर अशुभ	,,	अन्तमु.	मिथ्या. पर्याप्त संज्ञी	चरम समय वर्ती सयोगि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	उ. स्थि.	ज. स्थि.	उ. स्वा.	ज. स्वा.
आहारक सप्तक	अंतमु. न्यून अंत: को. को. सागर	सातवें गुणस्थान में संभव जघन्य अन्त: को. को. सागर	प्रथम समय वर्ती आहारक शरीरी प्रमत्तमुनि	चरम भवी आहारक शरीरी चरम समय वर्ती मुनि
वज्रऋषभ-नाराच संहनन	तीन आव. न्यून २० को. को. सागर	अन्तमुहूर्त	मिथ्यादृष्टि पर्या. संज्ञी मनुष्य, तिर्यंच	चरम समयवर्ती सयोगि.
मध्यम संह. चतुष्क	,,	आव. द्विक अधिक पांच अन्त. सहित पल्यो. अ. भा. न्यून २/७ सा.	,,	जघन्य स्थिति सत्ता-वाला एके. में से आगत स्वबंध आव. चरम समयवर्ती संज्ञी
सेवार्त संहनन	आवलिका-धिक अन्त. न्यून २० को. को. सागर	,,	उत्पत्तिस्थान के प्रथम समय में मि. पर्या. संज्ञी तिर्यंच	,,
समचतुरस्र-संस्थान	आवलिका त्रिक न्यून २० को. को. सागर	अन्तमुहूर्त	नारक बिना मिथ्या. सर्व पर्याप्ति से पर्याप्त	चरम समय वर्ती सयोगि.
मध्यमसंस्थान चतुष्क	,,	,,	सर्वपर्याप्ति से पर्या. मिथ्या. संज्ञी मनुष्य तिर्यंच	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिनाम	उ. स्थि.	ज. स्थि.	उ. स्थि. स्वा.	ज. स्थि. स्वा.
हुंडक संस्थान	आवलिका द्विक न्यून २० को. को. सागर	अन्तर्मुहूर्त	मिथ्या. नारक कुछ संपूर्ण पर्याप्त संज्ञी मनुष्य तिर्यंच	चरम समय वर्ती सयोगि.
नरकानुपूर्वी	साधिक आव. अन्त. न्यून २० को. को. सागर	साधिक पल्यो. असं. भाग न्यून २/७ सागर	विग्रह गति प्रथम समय वर्ती धूम्र प्रभादि तीन नरक	अल्पकाल बांधकर दीर्घायु. असंज्ञी में से आगत विग्रहगति तृतीय समयवर्ती नारक
देवानुपूर्वी	,,	,,	विग्रहगति प्रथम समय वर्ती देव	पूर्वोक्त प्रकार का जीव किन्तु देव
तिर्यंचानुपूर्वी	,,	आव. द्विक अधिक पल्यो. असं. भाग न्यू. २/७ सागर	विग्रह गति प्रथम समय वर्ती मिथ्या. तिर्यंच	जघन्य स्थिति सत्ता वाला एके. में से आगत विग्रह गति तृतीय समयवर्ती संज्ञी तिर्यंच
मनुष्यानुपूर्वी	,,	,,	वि. गति. प्रथम समय वर्ती मिथ्या. पर्या. गर्भज मनुष्य	पूर्वोक्त प्रकार का जीव, किन्तु मनुष्य
अशुभविहायोगति	आव. द्विक न्यून २० को. को. सागर	अन्तर्मुहूर्त	मिथ्या., नारक और स्वोदय वर्ती मनुष्य तिर्यंच	चरम समयवर्ती सयोगि.
शुभविहायोगति	आव. त्रिक न्यून २० को. को. सागर	,,	मिथ्या. देव स्वोदयवर्ती मनुष्य. तिर्यंच	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिनाम	उ. स्थि.	ज. स्थि.	उ. स्थि. स्वा.	ज. स्थि. स्वा.
आतप	आव. अधिक अन्त. न्यून २० को. को. सागर	आव. द्विक अधिक पल्यो. असं. भाग न्यून २/७ सागर	शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त प्रथम समय में खर बादर पृथ्वीकाय	जघन्य स्थिति सत्ता वाला शरीर पर्याप्ति-पर्याप्त खर पृथ्वीकाय
उद्योत	आव. द्विक न्यून २० को. को. सागर	,,	उत्तर शरीरी देव	जघन्य स्थिति सत्ता वाला शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त स्वोदय वर्ती एकेन्द्रिय
उपघात	,,	अन्तर्मुहूर्त	मिथ्या. पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय	चरम समय वर्ती सयोगी
पराघात	,,	,,	,,	,,
उच्छ्वास	,,	,,	,,	स्वनिरोध चरम समयवर्ती सयोगि.
तीर्थंकर	पल्यो. का असं. भाग	,,	स्वयोग्य उ. स्थि. स. वाला प्रथ. समयवर्ती तीर्थं. केवली	चरम समयवर्ती सयोगी जिन केवली
स्थिर. शुभ	आव. त्रिक न्यून २० को. को. सागर	,,	मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय	चरम समयवर्ती सयोगि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिनाम	उ. स्थि.	ज. स्थि.	उ. स्थि. स्वा.	ज. स्थि. स्वा.
सुभग, आदेय	आव. त्रिक न्यून २० को. को. सागर	अन्तर्मुहूर्त	स्वोदयवर्ती मिथ्या. पर्याप्त गर्भज तिर्यंच मनु और देव	चरम समयवर्ती सयोगि
यशःकीर्ति	,,	,,	नारक रहित स्वोदयवर्ती मिथ्या. पर्याप्त संज्ञी	,,
सुस्वर	,,	,,	मिथ्या. देव और स्वोदय गर्भज तिर्यंच मनुष्य	स्वर निरोध चरम समयवर्ती सयोगी
स्थावर	साधिक आव. अन्त. न्यून २० को. को. सागर	आव. द्विक अधिक अंत. सहित पल्यो. असं. भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समय वर्ती मिथ्या लब्धि-पर्याप्त बादर एके.	जघन्य स्थिति सत्ता वाला स्वबंध आव. का चरम समयवर्ती स्थावर
सूक्ष्म, साधारण	आव. द्विक. अधिक अंत. न्यून २० को. को. सागर	,,	क्रमशः सूक्ष्म और साधारण भवाद्य समय वर्ती	जघन्य स्थिति सत्ता वाला स्वबंधावलिका का चरम समय वर्ती क्रमशः सूक्ष्म और साधारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिनाम	उ. स्थि.	ज. स्थि.	उ. स्थि. स्वा.	ज. स्थि. स्वा.
अपर्याप्त	आव. द्विक अधिक अंत. न्यून २० को. को. सागर	आव. द्विक अधिक अंत. सहित पल्यो. असं. भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समय वर्ती लब्धि-अपर्याप्त	जघन्य स्थिति सत्ता वाला एकेन्द्रिय में से आगत स्वबंधावलिका चरम समयवर्ती अपर्याप्त संज्ञी
दुर्भग, अनादेय	आव. द्विक न्यून २० को. को. सागर	,,	मिथ्या. नारक और स्वोदय वर्ती गर्भज पर्याप्त तिर्यंच मनु. और देव	अपर्याप्त बिना पूर्वोक्त प्रकार का संज्ञी
अयशःकीर्ति	,,	,,	मिथ्या. स्वोदयवर्ती पर्याप्त संज्ञी	
दुःस्वर	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,	स्वर निरोध चरम समयवर्ती सयोगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : ६

अनुभागोदीरणापेक्षा मूल प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणादर्शक प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट
ज्ञानावरण दर्शनावरण	सादि अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव
वेदनीय	,,	,,	सादि, अध्रुव	सादि, अनादि, ध्रुव अध्रुव
मोहनीय	,,	,,	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव
आयु	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
नाम, गोत्र	,,	,,	,,	अनादि, ध्रुव, अध्रुव
अंतराय	,,	,,	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : १०

अनुभागोदीरणापेक्षा उत्तरप्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणादर्शक प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट
ज्ञानावरण पंचक, दर्शनावरण चतुष्क	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव
निद्रापंचक	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
दानान्तरादि अन्तराय पंचक	,,	,,	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	,,
मिथ्यात्वमोह	,,	,,	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव	,,
मिश्र, सम्यक्त्वमोहनीय अनन्तानुबंधि आदि सोलह कषाय, नव नोकषाय	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
वेदनीयद्विक, आयुचतुष्क, गोत्रद्विक	,,	,,	,,	,,
गतिचतुष्क जातिपंचक औदारिक सप्तक, वैक्रिय सप्तक, आहारक सप्तक	,,	,,	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिनाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट
तैजस सप्तक अगुरुलघु, निर्माण, मृदु-लघुबिना शुभ वर्ण नवक स्थिर, शुभ	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव
संहनन षट्क	,,	,,	,,	सादि, अध्रुव
संस्थान षट्क	,,	,,	,,	,,
मृदु, लघु स्पर्श	,,	,,	,,	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव
गुरु, कर्कश स्पर्श	,,	,,	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव
गुरु, कर्कश-बिना अशुभ वर्ण सप्तक, अस्थिर, अशुभ	,,	,,	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	,,
आनुपूर्वी चतुष्क	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
विहायोगतिद्विक	,,	,,	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट
उपघात, पराघात आतप, उद्योत उच्छ्वास, तीर्थंकर नाम, त्रस चतुष्क	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव
सुभग, आदेय यशःकीर्ति, सुस्वर	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव
स्थावरचतुष्क	,,	,,	,,	,,
दुर्भग चतुष्क	,,	,,	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : ११

अनुभागोदीरणापेक्षा मूलप्रकृतियों का घातित्व स्वामित्व दर्शक प्रारूप

प्रकृति नाम	घा. स्था. आश्रयी उत्कृष्ट	घा. स्था. आश्रयी जघन्य	विपाकी	उ. स्वा.	ज. स्वा.
ज्ञानावरण दर्शनावरण	सर्वघाति चतु स्था.	सर्वघाति द्वि. स्था.	जीव वि.	अति. संक्लि. मिथ्यात्वी पर्याप्त संज्ञी	समयाधिक आव. शेष क्षीणमोही
वेदनीय	सर्वघाति प्रति भाग चतु:स्था.	सर्वघाति प्रति भाग द्वि. स्था.	,,	उत्कृष्टस्थिति वाला पर्याप्त अनुत्तर वासी	परावर्तन मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि
मोहनीय	सर्वघाति चतु:स्था.	देशघाति एक स्था.	,,	अति सं. मिथ्यात्वी पर्याप्त संज्ञी	समयाधिक आव. शेष क्षपक सूक्ष्म संपरायी
आयु	सर्वघाति प्रतिभाग चतु:स्था.	सर्बघाति प्रति भाग द्वि. स्था.	भव विपाकी	उ. स्थि. वाला भवाद्य समयवर्ती	समयाधिक आव. शेष आयु वाला
नाम, गोत्र	,,	,,	क्रमशः भव बिना तीन जीव विपाकी	चरम समय वर्ती सयोगी	परा. मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि
अंतराय	देशघाति द्वि. स्थान	देशघाति एक स्था.	जीव विपाकी	सर्वाल्प लब्धि-वंत भवाद्य समयवर्ती अप. सूक्ष्म एके.	समयाधिक आवलिका शेष क्षीणमोही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : १२

अनुभागोदीरणापेक्षा उत्तर प्रकृतियों की घाति, स्थान एवं विपाकित्व प्ररूपणा दर्शक प्रारूप

प्रकृति नाम	घाति उत्कृष्ट अनु उदी.	घाति जघन्य अनु. उदी.	स्थान उत्कृष्ट अनु. उदी.	स्थान जघन्य अनु. उदी.	विपाकी
मति-श्रुता-वरण	सर्वघाति	देशघाति	चतुः स्था.	एक स्थान	जीवविपाकी कितनीक पर्याय-सहित सर्व जीव द्रव्य
अवधिद्विक-आवरण	,,	,,	,,	,,	जीवविपाकी रूपी द्रव्य में
मनपर्याय ज्ञानावरण	,,	,,	,,	द्वि. स्था.	जीवविपाकी कितनीक पर्याय सहित सर्व जीव द्रव्य
केवलद्विक-आवरण	,,	सर्वघाति	,,	,,	,,
चक्षुदर्शनावरण	,,	देशघाति	द्वि. स्था.	एक स्थान	जीवविपाकी गुरु लघु अनन्त प्रदेशी स्कन्ध में
अचक्षुदर्शनावरण	देशघाति	,,	,,	,,	,,
निद्रा, प्रचला	सर्वघाति	सर्वघाति	चतुः स्था.	द्वि. स्था.	जीवविपाकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	घाति उ.अनु.उ.	घाति ज.अनु उ	स्थान उ.अनु.उदी	स्थान ज.अनु.उदी	विपाकी
स्त्यानर्द्धित्रिक	सर्वघाति	सर्वघाति	चतुः स्था.	द्वि. स्था.	जीवविपाकी
दानान्तराय चतुष्क	देशघाति	देशघाति	द्वि. स्था.	एक स्थान	जीवविपाकी सर्व द्रव्य का अनन्तवां भाग
वीर्यान्तराय	,,	,,	,,	,,	जीवविपाकी कितनीक पर्याय सहित सर्व जीव द्रव्य
मिथ्यात्वमोह	सर्वघाति	सर्वघाति	चतुः स्था.	द्वि. स्था.	,,
मिश्रमोह	,,	,,	द्वि. स्था.	,,	,,
सम्यक्त्वमोह	देशघाति	देशघाति	,,	एक स्थान	,,
आद्य द्वादश कषाय	सर्वघाति	सर्वघाति	चतुः स्था.	द्वि. स्था.	जीव वि. कितनीक पर्याय सहित सर्व जीव द्रव्य
संज्व. चतुष्क	,,	देशघाति	,,	एक स्थान	,,
हास्यषट्क	,,	,,	,,	द्वि. स्था.	,,
नपुंसकवेद	,,	,,	,,	एक स्थान	,,
स्त्री, पुरुष वेद	,,	,,	द्वि. स्था.	,,	,,
वेदनीयद्विक	सर्वघाति प्रतिभाग	सर्वघाति प्रतिभाग द्वि. स्था.	चतुः स्था.	द्वि. स्था.	जीवविपाकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	घाति उ.अनु.उ	घाति ज.अनु.उ.	स्थान उ.अनु.उ.	स्थान ज.अनु उ.	विपाकी
गोत्रद्विक	सर्वघाति प्रतिभाग	सर्वघाति प्रतिभाग द्वि. स्था.	चतुः स्थान	द्वि. स्था.	जीवविपाकी
नरक-देव आयु	,,	,,	,,	,,	भवविपाकी
तिर्यंच-मनुष्य आयु	,,	,,	द्वि. स्था.	,,	,,
नरक, देव गति	,,	,,	चतुः स्थान	,,	जीवविपाकी
तिर्यंच-मनुष्य गति	,,	,,	द्वि. स्था.	,,	,,
एकेन्द्रिय आदि जाति चतुष्क	,,	,,	,,	,,	,,
पंचेन्द्रिय जाति	,,	,,	चतुः स्थान	,,	,,
औदारिक सप्तक	,,	,,	द्वि. स्था.	,,	पुद्गलविपाकी
वैक्रिय सप्तक	,,	,,	चतुः स्थान	,,	,,
आहारक सप्तक	,,	,,	,,	,,	,,
तैजस सप्तक अगुरुलघु, निर्माण, मृदुलघु बिना शुभ वर्ण नवक, स्थिर, शुभ	सर्वघाति प्रतिभाग	,,	,,	,,	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	घाति उ. अनु. उ.	घाति ज.अनु.उ.	स्थान उ अनु.उ.	स्थान ज.अनु.उ.	विपाकी
संहननषट्क	सर्वघाति प्रतिभाग	सर्वघाति प्रतिभाग	द्वि. स्था.	द्वि. स्था.	पुद्गलविपाकी
मध्यम संस्थान चतुष्क	,,	,,	,,	,,	,,
आदि, अंतिम संस्थान	,,	,,	चतुः स्थान	,,	,,
मृदु-लघुस्पर्श	,,	,,	,,	,,	,,
गुरु, कर्कश स्पर्श	,,	,,	द्वि. स्था.	,,	,,
गुरु-कर्कश बिना अशुभवर्णसप्तक, अस्थिर, अशुभ	,,	,,	चतुः स्थान	,,	,,
आनुपूर्वी चतुष्क	,,	,,	द्वि. स्था.	,,	क्षेत्रविपाकी
विहायोगतिद्विक	,,	,,	चतुः स्थान	,,	जीवविपाकी
उपघात, पराघात	,,	,,	,,	,,	पुद्गलविपाकी
आतप	,,	,,	द्वि. स्था.	,,	,,
उद्योत	,,	,,	चतुः स्थान	,,	,,
उच्छ्वास, तीर्थंकर, त्रसत्रिक	,,	,,	,,	,,	जीवविपाकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	घाति उ.अनु उ.	घाति ज.अनु उ.	स्थान उ अनु.उ.	स्थान ज.अनु.उ.	विपाकी
प्रत्येक	सर्वघाति प्रतिभाग	सर्वघाति प्रतिभाग	चतुःस्थान	द्वि. स्था.	पुद्गलविपाकी
सुभगचतुष्क दुर्भगचतुष्क	,,	,,	,,	,,	जीवविपाकी
स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त	,,	,,	द्वि. स्था.	,,	,,
साधारण	,,	,,	चतुःस्थान	,,	पुद्गलविपाकी

———

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १३

अनुभागोदीरणापेक्षा उत्तरप्रकृतियों के उत्कृष्ट जघन्य अनुभाग—स्वामित्व का प्रारूप

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट. अनु. उदी. स्वा.	जघन्य अनु. उदी. स्वा.
मति-श्रुतावरण	अतिसंक्लि. परिणामी मिथ्यात्वी पर्याप्त संज्ञी	सर्वोत्कृष्ट पूर्वलब्धिधर समयाधिक आव शेष क्षीणमोही
अवधिद्विक-आवरण	अवधिलब्धि रहित अति-संक्लि. परिणामी मिथ्या. पर्याप्त संज्ञी	परमावधि समयाधिक आव. शेष क्षीणमोही
मनपर्याय ज्ञानावरण	अतिसंक्लि. पर्या. संज्ञी	विपुलमतिमनपर्यायज्ञानी समयाधिक आव. शेष क्षीणमोही
केवलद्विक-आवरण	,,	समयाधिक आव. शेष क्षीणमोही
चक्षुदर्शनावरण	अतिसंक्लि. परिणामी पर्याप्त, चरमसमयवर्ती त्रीन्द्रिय	सर्वोत्कृष्ट पूर्वलब्धिधर समयाधिक आव. शेष क्षीणमोही
अचक्षुदर्शनावरण	सर्वाल्प लब्धियुक्त भवाद्य समयवर्ती सूक्ष्म एकेन्द्रियादि	,,
निद्रा-प्रचला	तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट मध्यम परिणामी पर्याप्त	उपशांत मोहवर्ती, द्वा समयाधिक आव. शेष क्षीणमोही
स्त्यानर्द्धित्रिक	,,	तत्प्रायोग्य विशुद्ध प्रमत्त यति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट अनु. उदी. स्वा.	जघन्य अनु. उदी. स्वा.
अन्तरायपंचक	सर्वाल्प लब्धियुक्त भवाद्य समयवर्ती सूक्ष्म एकेन्द्रिय	समयाधिक आव. शेष क्षीणमोही
मिथ्यात्वमोह	अति सं. परिणामी मिथ्या. पर्याप्त संज्ञी	एक साथ सम्यक्त्व-संयमाभिमुख चरम समयवर्ती मिथ्यात्वी
मिश्रमोहनीय	अतिसंक्लिष्ट मिथ्यात्वाभिमुख चरम समयवर्ती मिश्र दृष्टि	सम्यक्त्वाभिमुख चरम समयवर्ती मिश्रदृष्टि
सम्यक्त्वमोहनीय	मिथ्यात्वाभिमुख चरम-समयवर्ती सम्यग्दृष्टि	क्षायिक सम्यक्त्वाभिमुख समयाधिक आव. शेष. वेदक सम्यग्दृष्टि
अनन्ता. चतुष्क	अतिसंक्लि. मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संज्ञी	एक साथ सम्यक्त्व-संयमाभिमुखी चरम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि
अप्रत्या. चतुष्क	,,	संयमाभिमुख चरम समयवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि
प्रत्या. चतुष्क	,,	संयमाभिमुख चरम समयवर्ती देशविरत
संज्व. त्रिक	,,	स्वोदय चरम समयवर्ती अनिवृत्ति क्षपक
संज्व. लोभ	,,	समयाधिक आव. शेष. क्षपक सूक्ष्मसंपरायवर्ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट अनु. उदी. स्वा.	जघन्य अनु. उदी. स्वा.
हास्य, रति	सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त सहस्रार देव	चरम समयवर्ती अपूर्व-करण क्षपक
अरति, शोक, भय, जुगुप्सा	सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त उ. स्थि. वाला अति सं. सप्तम पृथ्वी का नारक	,,
नपुंसक वेद	,,	स्वोदीरणा चरम समय-वर्ती अनिवृत्ति क्षपक
स्त्रीवेद, पुरुषवेद	आठ वर्ष की आयु वाला आठवें वर्ष में वर्तमान अति सं. पर्याप्त, संज्ञी तिर्यंच	स्वोदीरणा चरम समय-वर्ती अनिवृत्ति क्षपक
सातावेदनीय	उत्कृष्ट स्थितिक सर्व विशुद्ध पर्याप्त अनुत्तरवासी देव	स्वोदय मध्यम परिणामी चार गति वाले
असातावेदनीय	उत्कृष्ट स्थितिक अति सं. पर्याप्त सप्तम पृथ्वी-नारक	,,
नीच गोत्र	,,	स्वोदयवर्ती मध्यम परि-णामी तदुदययोग्य जीव
उच्च गोत्र	चरम समयवर्ती सयोगिके.	,,
नरकायु	उ. स्थि. पर्या. अति सं. सप्तम पृथ्वी नारक	सर्व विशुद्ध जघन्य स्थितिक प्रथम पृथ्वी नारक
देवायु	सर्व विशुद्ध उत्कृष्ट स्थितिक अनुत्तर देव	अति संक्लि. जघन्य स्थितिक देव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट अनु. उदी. स्वा.	जघन्य अनु. उदी. स्वा.
तिर्यंचायु	सर्व विशुद्ध त्रिपल्योपम की आयु वाला युगलिक तिर्यंच	अति संक्लि. जघन्य स्थितिक तिर्यंच
मनुष्यायु	सर्व विशुद्ध त्रिपल्य आयु वाला युगलिक मनुष्य	अति संक्लि. जघन्य स्थितिक मनुष्य
नरकगति	उत्कृष्ट स्थिति वाला पर्याप्त सप्तम पृथ्वी नारक	मध्यम परिणामी नारक
तिर्यंचगति	अति सं. आठ वर्ष की आयु वाला आठवें वर्ष में वर्तमान संज्ञी तिर्यंच	मध्यम परिणामी तिर्यंच
मनुष्यगति	सर्व विशुद्ध त्रिपल्य की आयु वाला पर्याप्त युगलिक मनुष्य	मध्यम परिणामी मनुष्य
देवगति	उत्कृष्ट स्थितिक पर्याप्त अनुत्तर देव	मध्यम परिणामी देव
एकेन्द्रियजाति	अति सं. ज. स्थितिक पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय	मध्यम परिणामी एकेन्द्रिय
विकलेन्द्रियजाति	अति सं. ज. आयुष्क यथा संभव पर्याप्त विकलेन्द्रिय	मध्यम परिणामी यथा संभव विकलेन्द्रिय
पंचेन्द्रियजाति	उत्कृष्ट स्थितिक पर्याप्त अनुत्तर देव	मध्यम परिणामी पंचेन्द्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	उ. अनु. उदी. स्वा.	ज. अनु. उदी. स्वा.
औदारिक षट्क	अति विशुद्ध त्रिपल्यायुष्क पर्याप्त मनुष्य	अति संक्लिष्ट अल्पायु अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकाय
औदारिक अंगोपांग	,,	अति संक्लि. अल्पायु स्वोदय प्रथम समयवर्ती द्वीन्द्रिय
वैक्रिय षट्क	उत्कृष्ट स्थितिक पर्याप्त अनुत्तरदेव	अल्पायु अति सं. पर्याप्त बादर वायुकाय
वैक्रिय अंगोपांग	उत्कृष्ट स्थितिक पर्याप्त अनुत्तर देव	अल्पकाल बांध दीर्घायु असंज्ञी में से आगत स्वोदय प्रथम समयवर्ती अति संक्लिष्ट नारक
आहारक सप्तक	अति विशुद्ध पर्याप्त आहारक शरीरी अप्रमत्त-यति	अल्पकाल बांध तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट आहारक शरीरी प्रमत्त यति
तैजस सप्तक, अगुरुलघु, निर्माण, मृदु लघु बिना शुभ वर्णनवक, स्थिर, शुभ	चरम समयवर्ती सयोगी	तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट अनाहारक मिथ्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रिय
प्रथम संहनन	सर्व विशुद्ध त्रिपल्य आयुष्क पर्याप्त युगलिक मनुष्य	अति सं. अल्पायु स्वोदय प्रथम समयवर्ती असंज्ञी पंचेन्द्रिय
मध्यम संहनन चतुष्क	अति सं. अष्ट वर्षायुष्क आठवें वर्ष में वर्तमान संज्ञी तिर्यंच	अति विशुद्ध पूर्व कोटि वर्ष की आयु वाला स्वोदय प्रथम समयवर्तीमनुष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	उ० अनु० उदी० स्वा०	ज० अनु० उदी० स्वा०
सेवार्त संहनन	अतिसंक्लिष्ट अष्टवर्षायुष्क आठवें वर्ष में वर्तमान संज्ञी तिर्यंच	अति सं. बारह वर्ष की आयु वाला बारहवें वर्ष में वर्तमान द्वीन्द्रिय
प्रथम संस्थान	सर्व विशुद्ध पर्याप्त आहारक शरीरी अप्रमत्त यति	अति सं. अल्पायु स्वोदय प्रथम समयवर्ती असंज्ञी पंचेन्द्रिय
मध्यम संस्थान चतुष्क	अति सं. अष्टवर्षायुष्क आठवें वर्ष में वर्तमान संज्ञी तिर्यंच	अति विशुद्ध पूर्वकोटि वर्षायुष्क स्वोदय प्रथम समयवर्ती असंज्ञी पंचेन्द्रिय
हुंडक संस्थान	अति सं. उ. स्थितिक पर्याप्त सप्तम पृथ्वीनारक	उ. आयुष्क स्वोदय प्रथम समयवर्ती सूक्ष्म विशुद्ध परिणामी
मृदु लघु स्पर्श	अति विशुद्ध पर्याप्त आहारक शरीरी अप्रमत्त यति	तत्प्रायोग्य विशुद्ध अनाहारक संज्ञी पंचेन्द्रिय
गुरु कर्कश स्पर्श	अति सं. अष्टवर्षायुष्क आठवें वर्ष में वर्तमान संज्ञी तिर्यंच	केवलि समुद्घात में षष्ठ समयवर्ती
गुरु कर्कश स्पर्श बिना अशुभ वर्णसप्तक, अस्थिर अशुभ	अति संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संज्ञी	चरम समयवर्ती सयोगी
नरकानुपूर्वी	उ. स्थितिवाला विग्रहगति तृतीय समयवर्ती सप्तम पृथ्वीनारक	मध्यम परिणामी विग्रहगतिवर्ती नारक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	उ० अनु० उदी० स्वा०	ज० अनु० उदी० स्वा०
देवानुपूर्वी	उ. स्थितिवाला विग्रह-गति तृतीय समयवर्ती अनुत्तर-देव	मध्यमपरिणामी विग्रह-गतिवर्ती देव
तिर्यंचानुपूर्वी	अति सं. अष्टवर्षायुष्क विग्रहगति तृतीय समय-वर्ती संज्ञी तिर्यंच	मध्यमपरिणामी विग्रह-गतिवर्ती तिर्यंच
मनुष्यानुपूर्वी	अति विशुद्ध त्रिपल्य-आयुष्क विग्रहगति तृतीय समयवर्ती मनुष्य	मध्यमपरिणामी विग्रह-गतिवर्ती मनुष्य
अशुभ विहायोगति	अति सं. उत्कृष्ट स्थि-तिक पर्याप्त सप्तम पृथ्वीनारक	मध्यम परिणामी
शुभ विहायोगति	सर्व विशुद्ध पर्याप्त आहारकशरीरी अप्रमत्त यति	,,
उपघात	उ. स्थितिक पर्याप्त सप्तम पृथ्वी नारक	विशुद्ध दीर्घायु शरीरस्थ सूक्ष्म
पराघात	सर्वविशुद्ध पर्याप्त आहा-रक शरीरी अप्रमत्त यति	दीर्घायु अति सं. पर्याप्त चरमसमयवर्ती सूक्ष्म
आतप	सर्व विशुद्ध बादर पर्याप्त खर पृथ्वीकाय	अति सं. स्वोदय प्रथम समयवर्ती खर बादर पृथ्वीकाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	उ० अनु० उदी० स्वा०	ज० अनु० उदी० स्वा०
उद्योत	सर्व विशुद्ध पर्याप्त वैक्रियशरीरी अप्रमत्त यति	अति सं. स्वोदय प्रथम समयवर्ती खर बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय
उच्छ्वास	उ. स्थितिक पर्याप्त अनुत्तरवासी देव	उच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्ति मध्यम परिणामी
तीर्थंकरनाम	चरमसमयवर्ती सयोगी तीर्थंकर भगवान्	आयोजिकाकरण से पूर्व तीर्थंकर केवली
त्रसत्रिक	उ. स्थितिक पर्याप्त अनुत्तर-देव	परावर्तमान मध्यमपरिणामी उस-उस प्रकृति के उदय वाले जीव
प्रत्येक	सर्व विशुद्ध पर्याप्त आहारक शरीरी अप्रमत्त यति	अति सं. अल्पायु शरीरस्थ अपर्याप्त सूक्ष्म वायु.
सुभग, आदेय, यशःकीर्ति	चरमसमयवर्ती सयोगी	स्वोदयवर्ती परावर्तमान मध्यम परिणामी
सुस्वर	उत्कृष्ट स्थिति वाला पर्याप्त अनुत्तर-देव	,,
स्थावर	जघन्य स्थितिक अति सं. पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय	परावर्तमान मध्यम परिणामी स्थावर
सूक्ष्म	जघन्य स्थितिक अति संक्लिष्ट पर्याप्त सूक्ष्म	परावर्तमान मध्यम परिणामी सूक्ष्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	उ० अनु० उदी० स्वा०	ज० अनु० उदी० स्वा०
अपर्याप्त	अति सं. चरमसमयवर्ती अपर्याप्त मनुष्य	परावर्तमान मध्यम परि-णामी अपर्याप्त
साधारण	जघन्य स्थितिक अति सं पर्याप्त बादर निगोद	उ. आयुष्क स्वोदय प्रथम समयवर्ती सूक्ष्म विशुद्ध परिणामी
दुर्भगचतुष्क	उ. स्थितिवाला अति संक्लिष्ट पर्याप्त सप्तम पृथ्वी नारक	स्वोदयवर्ती परावर्तमान मध्यमपरिणामी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट : १४

प्रदेशोदीरणापेक्षा मूलप्रकृतियों की साद्यादि एवं स्वामित्व प्ररूपणा का प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उ. स्वा.	ज. स्वा.
ज्ञानावरण दर्शनावरण	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	समयाधिक आवलिका शेष क्षीण मोही	अति. संक्लि. मिथ्यात्वी पर्याप्त संज्ञी
वेदनीय	,,	,,	,,	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव	अप्रमत्ताभिमुख प्रमत्त यति	,,
मोहनीय	,,	,,	,,	,,	समयाधिक आव. शेष सूक्ष्म-संपरायी	,,
आयु	,,	,,	,,	सादि, अध्रुव	अति दुःखी जीव	अति सुखी जीव
नाम, गोत्र	,,	,,	,,	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	चरम समय वर्ती सयोगी	अति. संक्लि. मिथ्यात्वी पर्याप्त संज्ञी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उ. स्वा.	ज. स्वा.
अन्तराय	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	समयाधिक आवलिका शेष क्षीणमोही	अति. संक्लि. मिथ्यात्वी पर्याप्त संज्ञी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १५

प्रदेशोदीरणापेक्षा उत्तरप्रकृतियों की साद्यादि एवं स्वामित्व प्ररूपणा दर्शक प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे. उदी. स्वा.	जघन्य प्रदेशोदीरणा स्वा.
अवधि बिना चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, अंतराय पंचक	२	२	२	३	समयाधिक आवलिका शेष क्षीण मोही	सर्व पर्याप्ति से पर्याप्त अति संक्लि. मिथ्या. दृष्टि
अवधि द्विकावरण	२	२	२	३	अवधि लब्धि रहित, समयाधिक आव. शेष क्षीणमोही	अवधि लब्धि युक्त सर्व पर्याप्ति से पर्याप्त अति संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि
निद्रा, प्रचला	२	२	२	२	उपशांत मोही	तत्प्रायोग्य संक्लि. मध्यम परिणामी संज्ञी
स्त्यानर्द्धित्रिक	२	२	२	२	तत्प्रायोग्य विशुद्ध प्रमत्त यति	,,
वेदनीयद्विक	२	२	२	२	अप्रमत्ताभिमुख प्रमत्त यति	सर्व पर्याप्ति से पर्याप्त अति संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे. उदी. स्वा.	जघन्य प्रदेशोदीरणा स्वा.
मिथ्यात्वमोह	२	२	२	४	एक साथ सम्यक्त्व-चारित्राभिमुखी चरम समयवर्ती मिथ्यात्वी	सर्व पर्याप्ति से पर्याप्त अति संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि
मिश्रमोह	२	२	२	२	सम्यक्त्वाभिमुख चरम समयवर्ती मिश्रदृष्टि	मिथ्यात्वाभिमुख चरम समयवर्ती मिश्र दृष्टि
सम्यक्त्वमोह	२	२	२	२	क्षायिक सम्य. अभिमुख समयाधिक आव. शेष वेदकसम्यग्दृष्टि	मिथ्यात्वाभिमुख चरम समयवर्ती अविरत सम्यक्त्वी
अनन्ता. चतुष्क	२	२	२	२	एक साथ सम्यक्त्व चारित्राभिमुखी चरम समयवर्ती मिथ्यात्वी	सर्व पर्याप्ति से पर्याप्त अति-संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि
अप्रत्या. चतुष्क	२	२	२	२	संयमाभिमुख चरम समयवर्ती अवि. सम्यक्त्वी	,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे. उदी. स्वा.	जघन्य प्रदेशोदीरणा स्वा.
प्रत्या. चतुष्क	२	२	२	२	संयमाभिमुख चरम समयवर्ती देशविरत	सर्वपर्याप्ति से पर्याप्त अतिसंक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि
संज्वलनत्रिक	२	२	२	२	स्वोदीरणा चरम समयवर्ती क्षपक अनिवृत्तिकरण	,,
ंज्वलन लोभ	२	२	२	२	समयाधिक आव. शेष क्षपक सूक्ष्मसंपरायी	,,
हास्यषट्क	२	२	२	२	चरम समयवर्ती क्षपक अपूर्वकरण	,,
वेदत्रिक	२	२	२	२	स्वोदीरणा चरम समयवर्ती क्षपक अनिवृत्तिकरण	,,
नरकायु	२	२	२	२	उ. स्थिति वाला तीव्र दुखी सप्तम पृथ्वी नारक	जघन्य स्थिति वाला सुखी नरक
देवायु	२	२	२	२	ज. स्थितिवाला तीव्र दुखी देव	उ. स्थिति वाला सुखी अनुत्तरवासी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे. उदी. स्वा.	जघन्य प्रदेशोदीरणा स्वा.
तिर्यंच-मनुष्यायु	२	२	२	२	अष्ट वर्षायुष्क आठवें वर्ष में वर्तमान अति दुःखी क्रमशः तिर्यंच और मनुष्य	त्रिपल्योपमायुष्क अति सुखी क्रमशः तिर्यंच और मनुष्य
नीच गोत्र	२	२	२	२	संयमाभिमुख चरम समयवर्ती अवि. सम्यक्त्वी	सर्वोत्कृष्ट संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संज्ञी
उच्चगोत्र	२	२	२	२	चरम समयवर्ती सयोगी	,,
देवगति, नरकगति	२	२	२	२	विशुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वी क्रमशः देव और नारक	,,
तिर्यंचगति	२	२	२	२	सर्व विशुद्ध देशविरत तिर्यंच	सर्वोत्कृष्ट संक्लिष्ट मिथ्या. पर्याप्त तिर्यंच
मनुष्यगति	२	२	२	२	चरम समयवर्ती सयोगी	सर्वोत्कृष्ट संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि गर्भज पर्याप्त मनुष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे. उदी. स्वा.	जघन्य प्रदेशो-दीरणा स्वा.
एकेन्द्रिय जाति	२	२	२	२	विशुद्ध बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय	अति संक्लिष्ट बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय
विकलेन्द्रिय	२	२	२	२	अति विशुद्ध पर्याप्त विकलेन्द्रिय	अति संक्लि. पर्याप्ति विकलेन्द्रिय
पंचेन्द्रिय जाति, औदा. सप्तक, प्रथम संह. संस्थान-षट्क, त्रस चतुष्क, सुभग, आदेयद्विक उपघात, परा-घात, विहायो-गतिद्विक	२	२	२	२	चरम समय-वर्ती सयोगी	सर्वोत्कृष्ट संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संज्ञी
वैक्रिय सप्तक	२	२	२	२	सर्व विशुद्ध अप्रमत्त यति	,,
आहारक सप्तक	२	२	२	२	,,	तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट प्रमत्त यति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे. उदी. स्वा.	जघन्य प्रदेशो-दीरणा स्वा.
तैजस सप्तक, वर्णादि बीस, अगुरुलघु, निर्माण, स्थिरद्विक अस्थिरद्विक	२	२	२	२	चरम समयवर्ती सयोगी	सर्वोत्कृष्ट संक्लिष्ट मिथ्या. पर्याप्त संज्ञी
नरक, तिर्यंचानुपूर्वी	२	२	२	२	विग्रहगति, तृतीय समयवर्ती क्षायिक सम्यक्त्वी क्रमशः नारक, और तिर्यंच	विग्रहगतिवर्ती अति संक्लिष्ट क्रमशः नारक और तिर्यंच
देव-मनुष्यानुपूर्वी	२	२	२	२	विग्रहगति, तृतीय समयवर्ती क्षायिक सम्यक्त्वी, विशुद्ध सम्यक्त्वी क्रमशः देव और मनुष्य	विग्रहगतिवर्ती अति संक्लिष्ट मिथ्यात्वी क्रमशः देव और मनुष्य
आतप	२	२	२	२	अति विशुद्ध पर्याप्त खर पृथ्वीकाय	अति संक्लिष्ट पर्याप्त खर पृथ्वीकाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे. उदी. स्वा.	जघन्य प्रदेशोदीरणा स्वा.
उद्योत	२	२	२	२	सर्व विशुद्ध उत्तर-शरीरी अप्रमत्तयति	अति संक्लिष्ट पर्याप्त मिथ्यादृष्टि संज्ञी
उच्छ्वास, सुस्वर दुःस्वर	२	२	२	२	स्वरनिरोध चरम समयवर्ती सयोगी	,,
तीर्थंकरनाम	२	२	२	२	चरम समयवर्ती सयोगी	आयोजिकाकरण के पूर्व तीर्थंकर केवली
स्थावर, सूक्ष्म, साधारण	२	२	२	२	अति विशुद्ध क्रमशः पर्याप्त पृथ्वीकाय, सूक्ष्म और साधारण	अति संक्लिष्ट क्रमशः पर्याप्त स्थावर सूक्ष्म साधारण
अपर्याप्त	२	२	२	२	चरम समयवर्तीसंमूच्छिम मनुष्य	अति संक्लिष्ट चरम-समयवर्ती अपर्याप्त गर्भज मनुष्य
दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति	२	२	२	२	संयमाभिमुख चरम समयवर्ती अविरत सम्यक्त्वी	अति संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संज्ञी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे. उदी. स्वा.	जघन्य प्रदेशोदीरणा स्वा.
अंतिम पाँच संहनन	२	२	२	२	सर्व विशुद्ध स्वोदयवर्ती अप्रमत्तयति	अति संक्लि. मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संज्ञी

संकेत चिन्ह—२ सादि अध्रुव, ३ अनादि, ध्रुव, अध्रुव
४ सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति उदीरणा में अद्धाच्छेद का प्रारूप

स्वोदय बन्धोदया प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति लता	बंधावलिका	उदयावलिका		उदीरणा प्रायोग्य स्थितियाँ
	अद्धाछेद २ आवलिका मात्र			
उदयसंक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति लता	बंधावलिका	संक्रमावलिका	उदयावलिका	उदीरणा प्रायोग्य स्थितियाँ
	अद्धाच्छेद आवलिकात्रय प्रमाण			
मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिलता	अन्तर्मुहूर्त मिथ्यात्व में ही स्थिति रूप से			संक्रम प्रायोग्य स्थितियाँ सम्यक्त्व की उदीरणायत्स्थिति आवलिकाधिक अन्तर्मुहूर्त न्यून ७० को. को. सागर प्रमाण
सम्यक्त्व की स्थितिलता (मिथ्यात्व के संक्रम से) अन्तर्मुहूर्तहीन ७० को. को. सागर. प्रमाण	संक्रमावलिका अद्धाच्छेद	उदयावलिका दो आवलिका न्यूनान्तर्मुहूर्त		सम्यक्त्व की उदीरणा प्रायोग्य स्थितियाँ आवलिकाद्विक अधिक अन्तर्मुहूर्त न्यून ७० को को. सागर. प्रमाण[1]
मिश्र मोहनीय की स्थितिलता (सम्यक्त्व के संक्रम से) अन्तर्मुहूर्तहीन ७० को. को. सागर. प्रमाण	अन्तर्मुहूर्त (सम्यक्त्वोदयकालीन)	उदयावलिका		उदीरणा प्रायोग्य स्थितियाँ (आवलिकाधिक-अन्तर्मुहूर्तद्वय न्यून ७० को. को. सागर. प्रमाण[1])
	अद्धाछेद आवलिकाधिक अन्तर्मुहूर्त			

इसी पद्धति से शेष प्रकृतियों के अद्धाच्छेद स्वयं विचार कर लेना चाहिए।

१ ग्रन्थकार ने उदयावलिका सत्कावलिकात्व नहीं कहा है किन्तु पद्धति क्रम से आवलिकाधिकत्व ग्रहण आवश्यक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन

१—६ **कर्मग्रन्थ** (भाग १ से ६) संपूर्ण सेट ७५)

७—१६ पंचसंग्रह (भाग १ से १० तक)
संपूर्ण सेट रियायती मूल्य १००)

१७ जैन धर्म में तप : स्वरूप और विश्लेष १०)
(तप के सर्वांगीण स्वरूप पर शास्त्रीय विवेचन)

१८—३६ **प्रवचन साहित्य**

१. प्रवचन प्रभा ५)
२. धवल ज्ञान धारा ५)
३. जीवन ज्योति ५)
४. प्रवचन सुधा ५)
५. साधना के पथ पर ५)
६. मिश्री की डलियां १२)
७. *मित्रता की मणियां १५)*
८. मिश्री विचार वाटिका २०)
९. पर्युषण पर्व सन्देश १५)

२७—३६ सुधर्म प्रवचन माला (१० पुस्तकें) मूल्य— ६)

३७—४४ **उपदेश साहित्य**

सप्त व्यसन पर लघु पुस्तिकाएँ—

१. सात्विक और व्यसनमुक्त जीवन १)
२. विपत्तियों की जड़ : जूआ १)
३. मांसाहार : अनर्थों का कारण १)
४. मानव का शत्रु : मद्यपान १)
५. वेश्यागमन : मानव जीवन का कोढ़ १)
६. शिकार : पापों का स्रोत १)
७. चोरी : अनैतिकता की जननी १)
८. परस्त्री-सेवन : सर्वनाश का मार्ग १)

४५ जीवन-सुधार (संयुक्त आठों पुस्तकें) ८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६—५५ उपन्यास-कहानी साहित्य

१. सांझ सबेरा ४)
२. भाग्य क्रीड़ा ४)
३. धनुष और बाण ५)
४. एक म्यान : दो तलवार ४)
५. किस्मत का खिलाड़ी ४)
६. बीज और वृक्ष ४)
७ फूल और पाषाण ५)
८. तकदीर की तस्वीर ४)
९. शील-सौरभ ५)
१०. भविष्य का भानु ५)

५६-५८ काव्य साहित्य

५६ जैन रामयशोरसायन १५) (जैन रामायण)
५७ जैन पांडव यशोरसायन ३०) (जैन महाभारत)
५८ तकदीर की तस्वीर

विविध साहित्य

५९ विश्वबन्धु महावीर १)
६० तीर्थंकर महावीर १०)
६१ संकल्प और साधना के धनी :
मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज २५)
६२ दशवैकालिक सूत्र (पद्यानुवाद सहित) १५)
६३ श्रमण कुल तिलक आचार्य श्री रघुनाथ जी महाराज २५)
६४ मिश्री काव्य कल्लोल (संपूर्ण तीन भाग) २५)
६५ अन्तकृद्दशा सूत्र (पत्राकार) १२)

संपर्क करें

श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राज०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत ग्रन्थ : एक परिचय

कर्मसिद्धान्त एवं जैनदर्शन के प्रकाण्ड विद्वान आचार्य **चन्द्रर्षि महत्तर** (विक्रम ९-१० शती) द्वारा रचित कर्मविषयक पाँच ग्रन्थों का सार संग्रह है—पंच संग्रह।

इसमें योग, उपयोग, गुणस्थान, कर्मबन्ध, बन्धहेतु, उदय, सत्ता, बन्धनादि आठ करण एवं अन्य विषयों का प्रामाणिक विवेचन है जो दस खण्डों में पूर्ण है।

आचार्य मलयगिरि ने इस विशाल ग्रन्थ पर अठारह हजार श्लोक परिमाण विस्तृत टीका लिखी है।

वर्तमान में इसकी हिन्दी टीका अनुपलब्ध थी। श्रमणसूर्य **मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज** के सान्निध्य में तथा मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि जी की संप्रेरणा से इस अत्यन्त महत्वपूर्ण, दुर्लभ, दुर्बोध, ग्रन्थ का सरल हिन्दी भाष्य प्रस्तुत किया है—जैनदर्शन के विद्वान श्री देवकुमार जैन ने।

यह विशाल ग्रन्थ क्रमशः दस भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से जैन कर्म सिद्धान्त विषयक एक विस्मृतप्रायः महत्वपूर्ण निधि पाठकों के हाथों में पहुँच रही है, जिसका एक ऐतिहासिक मूल्य है।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्राप्ति स्थान :—

श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

आवरण पृष्ठ के मुद्रक : अशोका आर्ट प्रिंटर्स, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org